श्रीहित
रस-सुधा-निधि
(सानुवाद)





अनुवादक -

परम भागवत स्वामी श्रीहितदास जी महाराज

रसिकाचार्य शिरोमणि अनन्त श्री विभूषित
गोस्वामी श्रीहित हरिवंशचन्द्र महाप्रभु प्रणीत

श्रीहित
रस-सुधा-निधि

(सानुवाद)



अनुवादक
परम भागवत
स्वामी श्री हितदास जी महाराज
''रसिक-पद-रेणु''

हित साहित्य प्रकाशन
श्री हिताश्रम सत्संग भूमि
गाँधी मार्ग, वृन्दावन-281121
मोबाइल : 09219595389 -0565-6454387

प्रकाशक :
श्री हित साहित्य प्रकाशन
श्री हिताश्रम सत्संग भूमि
गाँधी मार्ग, वृन्दावन-281121
श्री हिताश्रम (09219595389, 0565-6454387)
श्रीहित अचल विहार (0565-6455114)

टीकाकार -
परम भागवत
स्वामी श्रीहितदास जी महाराज
''रसिक-पद-रेणु''

तृतीय संस्करण - 1100 प्रतियाँ

प्रकाशन तिथि - सन्-2012
कार्तिक वदी दौज, संवत् 2069
पूज्य महाराज श्री के पावन जन्मोत्सव पर

न्यौछावर : 60/- रुपये

मुद्रक :
राधा प्रेस
2465, मेन रोड, कैलाश नगर, दिल्ली-110031
दूरभाष - 011 - 22083107

रसिक अनन्य प्रधान सतु साधु मंडली मंडनो जयति



रस-रीति प्रकाशक, रसावतार, वंशी स्वरूप

श्री हित हरिवंश महाप्रभुपाद

प्राकट्य - संवत् १५५९ वैशाख शुक्ल एकादशी, सोमवार।

निकुँज गमन - संवत् १६०९ शरद पूर्णिमा।

समर्पण

त्वदीयं वस्तु हरिवंश !
तुभ्यमेव समर्पये !

तुम्हारी
– हितदासी (नेहलता)

मंगलाचरण

प्रीतिरिवमूर्तिमती रस सिन्धोः,
सार सम्पदिव विमला।
वैदग्धीनां हृदयं काचन,
वृन्दावनाधिकारिणी जयति।।

वन्दे तारा तनयमुदारम्।

आगम निगम अलक्ष्य अगोचर,
प्रगटित विशद सुविपिन विहारम्॥

रसिक सभा मंडन रस भूषन,
निज हित रीति प्रीति विस्तारम्॥

श्री राधा रति केलि कुँज रस,
रसिक अनन्य वहन रसभारम्॥

निरभिमान करूना - वरूनालय,
आरत सरनागत प्रतिपारम्॥

'नेहलता हित' देहि दयामय,
निज पदपल्लव रसघन सारम्॥

- स्वामी श्री हितदास जी
(नेहलता सखी)

बसौ लसौ फूलौ फलौ, मो हीय भूमि विशाल।
कनक लता सी लाड़िली, लपटी स्याम तमाल।।



श्री हिताश्रम विराजमान् पूज्य महाराज श्री के प्राणसर्वस्व
लाड़िले ठा॰ श्री हित ललित लाड़िली लाल जू

द्वितीय संस्करण की भूमिका

महाराज जी के निकुँज गमन के पूर्व का लेख

वृन्दावनीय रसोपासना के क्षेत्र में श्रीरस-सुधा निधि किंवा प्रचलित नाम श्रीराधा-सुधा-निधि का स्थान, समस्त व्रज वाणी साहित्य, संस्कृत-साहित्य और उस सब साहित्य के मूर्द्धन्य पर विराजमान् है, जिसका सम्बन्ध व्रज-वृन्दावन के भक्ति साहित्य से है। वैष्णव-आगम, और पुराणों के रस-विवेचन के पश्चात् विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में भक्ति आन्दोलन का जो उन्नयन हुआ और जिसने समग्र भारत की आत्मा को भक्ति रस में सराबोर कर दिया, उसमें वृन्दावन के रसिक सन्तों का योगदान अपने आप में अपूर्व और अनुपम है। वृन्दावन के रसिक समाज के रस-रसिकाधार गोस्वामी श्रीहित हरिवंश चन्द्र प्रणीत इस आर्ष ग्रन्थ रत्न ने श्रीराधा पादारविन्द की रसमयी अनन्य रसोपासना के समग्र उपासनीय भावों का निष्पक्ष भाव से प्रतिपादन किया है, क्योंकि गोस्वामी श्रीहित हरिवंश चन्द्र अपने युग के रस सिद्ध मंत्र-द्रष्टा ऋषि थे। उन्होंने स्व-पर निन्दा दृष्टि से ऊपर उठकर राधा रूप रस तत्त्व का सर्वत्र समभाव से साक्षात्कार किया था। उन्होंने स्वयं लिखा है—

ये क्रूरा अपि पापिनो, न च सतां संभाष्य दृष्याश्च ये,
सर्वान् वस्तु तया निरीक्ष्य परम स्वाराध्य बुद्धिर्मम।

ग्रन्थ का स्वरूप मूल्यांकन तो प्रेम-रस प्रवीण, पवित्रात्मा सन्त मनीषी ही कर सकेंगे। अस्मदादि तुच्छ जीवों की गति तो उस रस-राशि के समीप तक भी संभव नहीं है। अनधिकारी होते हुए भी केवल आस्वादनार्थ इसके शब्दों के पर्याय लिखने, श्लोकों के भाव समझने-समझाने का मैंने बाल प्रयास किया है, सुधीजन क्षमा करेंगे।

अस्तु; प्रकाशित ग्रन्थ प्रथम बार सन् १९५० ई० में छपा था। इसकी हिन्दी टीका को विद्वानों ने बहुत सराहा और रुचि से ग्रहण किया था। इस टीका की माँग बराबर बनी रही किन्तु अन्यान्य कारणों से इसके मुद्रण में विलम्ब होता ही गया। यह एक शुभ संयोग ही है कि सन्त भाता श्रीधर्मवती देवी राधावल्लभीय के मन में इसके पुनः प्रकाशन की भावना जागी और उन्होंने पूर्ण द्रव्य सहयोग देकर इसे मुद्रित कराके वृन्दावन-रस के रसिक जनों को श्रीराधा-रस सुधा का पान कराने का पुण्य लाभ लिया।

हम इनकी निःस्वार्थ सेवा के आभारी हैं। इस प्रसंग में हम इनके भ्राता श्रीभोपाल सिंह चौहान को भी धन्यवाद देना नहीं भूल सकते जिनके हार्दिक सहयोग और श्रम से यह महान कार्य सम्पन्न हुआ। श्रीप्रीतम लाल गोस्वामी जिन्होंने अपने व्यक्तिगत प्रयास से ग्रंथ के प्रूफ संशोधन से लेकर ग्रंथ को पुस्तकाकार बनाने तक जो अपना हार्दिक सहयोग और श्रम-दान किया है हम उनके प्रति कृतज्ञ हैं।

अन्त में, समस्त सहृदय रसज्ञ पाठकों, रसिकों, सन्तों और भक्तों से क्षमा-याचना पूर्वक विनम्र निवेदन है कि आप श्रीरस-सुधा निधि के प्रकाशन की हमारी भूलों और त्रुटियों को नजर-अन्दाज करके इसका रसास्वादन करें। साम्प्रदायिक ऊल-जुलूल ऊहापोहों में न पड़ें। आम खायें, आम के पेड़ों के गिनने का व्यर्थ श्रम न करें। ग्रन्थकार ने आपके रसास्वादन के लिये ही इसकी रचना की है। इतिशम्।

विनीत :
स्वामी हितदास

श्रीराधाष्टमी
वि० सम्वत २०४९
४ अगस्त, १९९२

श्री राधा



श्री हित कृपा मूर्ति

स्वामी श्री हितदास जी महाराज

जन्म संवत-१९७२, कार्तिक कृष्णा द्वितीया सन्-१९१५ (द्वितीय शरद)

निकुँजगमन, वि.सं.-२०६० भाद्रपद पूर्णिमा (सांझी लीला के प्रथम दिवश)

१० सि. सन् - २००३

॥ श्रीराधावल्लभोजयति ॥

भूमिका

पाश्चात्य सभ्यता ने भारत पर अपना कम असर नहीं डाला है। इसीलिए प्रायः नव-शिक्षित भारतीयों का अपने प्राचीन साहित्य, सभ्यता आदि पर से स्नेह भी उठ-सा गया है। साहित्य के नव-रसों में से शृंगार-रस तो अधिक लोगों के लिये व्यर्थ एवं उपहासास्पद हो गया है। किन्तु यथार्थ में बात ऐसी है नहीं। विद्वान् मनीषियों ने शृङ्गार-रस के साहित्य को ही सर्वश्रेष्ठ स्वीकार किया है।

हम यहाँ जिस ग्रन्थ के विषय में कुछ लिखने जा रहे हैं वह संस्कृत-साहित्य का एक अनुपम शृङ्गार-रस पूर्ण काव्य-ग्रन्थ है। इसकी रूप-रेखा का अङ्कन स्वयं ग्रन्थकार के इसी एक श्लोक पर से हो सकेगा—

"अद्भुतानन्द लोभश्चेन्नाम्ना रस-सुधानिधिः।
स्तवोयं कर्णकलशैर्गृहीत्वा पीयतां बुधाः॥"
—श्रीहित हरिवंशचन्द्र

और श्रीहित हरिवंशचन्द्र का परिचय देते हुए श्रीध्रुवदास जी ने कहा है—

"प्रगट प्रेम को रूप धरि, श्रीहरिवंश उदार।
राधावल्लभलाल कौ, प्रगट कियो रस सार॥
निगम ब्रह्म परसत नहीं, जो रस सबतें दूरि।
प्रगट कियौ हरिशवंजू, रसिकन जीवन-मूरि॥"

इन प्रेमावतार के द्वारा गान की गई 'श्रीरस-सुधा-निधि' वास्तव में सुधा-निधि ही है। इसे पढ़ते ही ऐसा आभासित होता है कि प्रेमाभिलाष-वेलि की प्रत्येक श्लोक-कोंपल प्रतिक्षण वर्द्धमान् होती हुई अपने प्रियतम

को आवेष्टित कर लेने के लिये लहलहाकर उठ रही है। अथवा अनेक ललक-निर्झरों का स्नेहसलिल एकत्र होकर अनवरत अनुराग-धारावाही इष्ट-सङ्गोन्मत्त आवर्त्त-मयी रसकुल्या के रूप में प्रवाहित हो रहा है। सर्वत्र अथ से इति तक प्रेम–विशुद्ध प्रेम की ही झाँकी है। इस प्रेम के चन्द्रालोक ने कर्म, धर्म, उपासना, ज्ञान, योग आदि तारागणों को ज्योत्स्ना-विहीन-सा कर दिया है।

आचार्य्यपाद कहीं अपनी आराध्या श्रीराधा की नाम-स्मृति में डूब-कर प्रेम-पूरित वचनों में कह उठते हैं—

"सा राधेति सदा हृदि स्फुरतु मे विद्या परा द्व्यक्षरा।"

अर्थात् 'वह राधा नामक द्व्यक्षरा परा-विद्या सदा ही मेरे हृदय में स्फुरित रहे।'

क्योंकि 'राधेति मे जीवनम्'।
'राधा ही तो मेरा जीवन है'।

इस श्रीराधा नाम की विशेषता क्या है? इस पर कहते हैं—

"जल्पत्यश्रु मुखो हरिस्तदमृतम्" और
"सदा जपति यां श्रेमाश्रु पूर्णो हरिः।"

हरि की 'प्रेम नीर दृग, मुख राधा रट' यह दशा है।

यदि कोई पूछे कि श्रीहरि, श्रीराधा नाम किस प्रकार रटते रहते हैं? तो उत्तर में आप कहते हैं—

"योगीन्द्र वद्यत्पद ज्योतिर्ध्यान परः।"

कहीं नाम-स्मृति के साथ ही श्रीप्रिया-चरणारविन्दों का नमन करते हुए कह उठते हैं—

"..............श्रीवृषभानुनन्दिनि सदा वन्दे तव श्रीपदम्।"

कभी अभिलाषा के उमाह में कहते हैं —

"कदा नु वृन्दावन कुञ्ज वीथीष्वहं नु राधे ह्यतिथिर्भवेयम्"।

अर्थात् 'हे श्रीराधे! क्या मैं कभी वृन्दावन की कुञ्जवीथियों में अतिथि (अभ्यागत) होऊँगी?'

कभी आकांक्षा करते हैं—

"कदा रसाम्बुधि समुन्नतं वदन-चन्द्रमीक्षे तव?"

अर्थात् मैं समुन्नत रस-समुद्र रूप आपके मुखचन्द्र को कब देखूंगी?

कभी रूप-लावण्यमयी नव-यौवना किशोरी श्रीराधा का ध्यान आते ही—

"तस्मै नमो भुवन मोहन मोहनाय-
श्रीराधिके तव नवस्तन मण्डलाय।"

—कहकर केवल नमस्कार ही कर लेते हैं। और इन्हीं श्रीप्रिया-चरणों के दास्य की अभिलाषा करते हुए उस दास्य की श्रेष्ठता का वर्णन करते हैं—

"र्काह स्यां श्रुति शेखरो परिचरन्नाश्चर्य्यचर्य्याचरन्।'

अर्थात् 'राधे ! मैं कब आपकी श्रुति-शेखर-उपनिषदोपरि।
परिचर्या—आश्चर्यमयी परिचर्य्या का आचरण करूँगी ?
उस परिचर्या के समक्ष—

'वृथा श्रुति-कथा बत बिभेमि कैवल्यतः।'

'श्रुति कथा भी व्यर्थ है और कैवल्य तो भयप्रद है।'

एवं—

'धर्माद्यर्थचतुष्टयं विजयतां किं तद्वृथा वार्त्तया ?'

'अरे ! ये धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष होंगे उत्तम किसी और के लिये ! हमें तो उनकी चर्चा से भी कुछ लाभ नहीं !'

इस प्रकार श्री राधिका-चरणों की महत्ता दिखाकर साधक के चित्त में रस-लोलुपता का उदय करते हैं, फिर क्रमशः उस रस की प्राप्ति का मार्ग दिखाते हैं। तत्पश्चात् उस दास्यरस का आनन्द और उसकी अनिर्वचनीयता का संकेत करते हैं—

"प्रमोल्लासैक सीमा परमरस चमत्कार वैचित्र्य सीमा,
सौन्दर्य्यस्यैक सीमा किमपि नय वयो रूप लावण्य सीमा।
लीला माधुर्य्य सीमा निज जन परमौदार्य्य वात्सल्य सीमा,
सा राधा सौख्य सीमा जयति रतिकला केलि माधुर्य्य सीमा॥"

बस, इन्हीं श्रीराधा का चरण-दास्य ही सबका एकमात्र अभीष्ट होना चाहिये। इस बात को आप अपनी निष्ठा-द्वारा प्रकट करते हैं—

"यत्र तत्र मम जन्म कर्मभिर्नारकेथ परमे पदेथ वा।
राधिका रति-निकुञ्ज-मण्डली तत्र तत्र हृदि मे विराजताम्॥"

अर्थात् 'मैं अपने जन्म-कर्मानुसार नरक किंवा परम पद कहीं भी जाऊँ? सब जगह हृदय में श्रीराधिकारति-निकुञ्जमण्डली सर्वदा विराजमान रहे।'

ऐसी महिमामयी श्रीप्रियाजी की उपासना करने वाले महापुरुषों की वन्दना करते हुए उनके स्वरूप का दिग्दर्शन कराते हैं—

न जानीते लोकं न च निगमजातं कुलपरं—
परां वा नो जानत्यहह न सतां चापि चरितम् ।

और—

त्यक्ताः कर्मभिरात्मनैव भगवद्धर्म्मेप्यहो निर्ममाः ।

अर्थात् 'वे रसिक-जन न लोक-वेद को ही जानना चाहते और न आदर्श कुल-परम्परा को ही जानते। और तो और सन्त-आचरण के आदर्श के भी वे कायल नहीं ! अरे ! उन्होंने कर्मों को नहीं छोड़ा वरं कर्मों ने ही उन्हें त्याग दिया। आश्चर्य तो यह कि वे श्रीराधाचरण-रसोन्मत्त होकर भगवद्धर्म्म से भी निर्मम हो गये'। इसलिये—

"सर्वाश्चर्य्य गतिं गता रसमयीं तेभ्यो महद्भ्यो नमः।"

अर्थात् 'सर्वाश्चर्य्य गति को प्राप्त हुए उन श्रीराधारसोन्मत्त रसिकों—महज्जनों की मैं वन्दना करता हूँ।'

इस प्रकार श्रीहित हरिवंशचन्द्र महाप्रभु पाद ने अपने ग्रन्थ 'श्रीराधा-सुधा निधि' में श्रीराधाकृष्ण-स्वरूप, श्रीवृन्दावनस्वरूप, रसिक स्वरूप, रसोपासना-पद्धति, और इन सबका महत्त्व भली-प्रकार प्रदर्शित किया है। उक्त प्रसङ्ग में श्रीराधासुधा-निधि का बिन्दु-मात्र ही निकालकर पाठकों को दिखाया गया है। इस सुधा-समुद्र का पूर्ण रूपेण आस्वादन तो पाठकगण करेंगे ही। यह उन महापुरुष की देन है, जिनके सम्बन्ध में भक्तमाल-कार स्वामी श्रीनाभाजी महाराज कहते हैं—

श्रीराधा-चरन-प्रधान हृदय अति सुदृढ़ उपासी।
कुञ्ज-केलि दम्पती तहाँ की करत खवासी॥
सर्वसु महाप्रसाद प्रसिद्ध ताके अधिकारी।
विधि-निषेध नहिं दासि अनन्य उत्कट ब्रतधारी॥
श्रीव्यास-सुवन पथ अनुसरै सोई भलैं पहिचानि है।
श्रीहरिवंश गुसांई-भजन की रीति सकृत कोऊ जानि है॥

—भक्त-माल

श्रीनाभाजी महाराज की इस उक्ति का विद्वान् विवेकी, एवं निष्पक्ष महात्मा-गण ही यथार्थ भाव समझ सकेंगे। हां, यह बात अवश्य है कि श्रीराधा-सुधानिधि के मर्म को समझने के लिए श्रीहित हरिवंशचन्द्र महाप्रभु के रसोपासना-सिद्धान्त को भी भली प्रकार समझना आवश्यक होगा। तभी

ग्रन्थ एवं ग्रंथकार दोनों का यथार्थ रूप समझा जा सकेगा, और श्रीनाभाजी की उक्ति की चरम सत्यता समझ में आ सकेगी।

अस्तु; अब इस ग्रंथ के सम्बन्ध में दूसरी विचारणीय बात यह है कि अभी-अभी कुछ वर्षों से श्रीमाध्वगौड़ेश्वर सम्प्रदायानुगत वैष्णवों ने इस ग्रंथ के आदि और अन्त में श्रीकृष्ण-चैतन्त महाप्रभु की वन्दना के दो श्लोक नवीन जोड़ कर इसकी श्लोक-संख्या दो सौ सत्तर से बढ़ाकर दो सौ बहत्तर कर दी है और वे इसे श्रीस्वामी प्रबोधानन्दजी सरस्वती कृत बताने लगे हैं। तथा इसका पूर्व प्रचलित नाम भी उन्होंने थोड़ा-सा बदल दिया है। वे इसे 'श्रीराधा-सुधा-निधि' की जगह 'श्रीराधा-रस-सुधा निधि' लिखने, छपाने लगे हैं। ऐसी दशा में यह आवश्यक हो जाता है कि सत्य-सूर्य का उदय करके इन पक्षपाती साम्प्रदायिक जनों का कपट-कुहर विलीन कर दिया जाय। इसके लिये हम यहाँ कुछ पुष्ट-प्रमाण उपस्थित करते हैं, जिनसे अपने आप ही पाठकों को सत्य एवं असत्य का साक्षात्कार हो जायेगा—

(१) श्रीराधा-सुधा-निधि ग्रंथ अपनी इष्ट-अनन्यता के लिये प्रसिद्ध है और श्रीप्रबोधानन्दजी अपनी धाम-अनन्यता के लिये विख्यात् हैं। फिर कैसे हो सकता है कि एक ही व्यक्ति दो प्रकार की निष्ठाओं से पूर्ण हो सके और धाम-अनन्यता के साथ-साथ इष्ट-अनन्यता को लिये रह सके। धाम-अनन्य श्रीप्रबोधानन्द पादको वृन्दावन के बाहिर यदि कहीं युगल-सरकार प्राप्त भी हों तो वे उन्हें नहीं चाहते। उन्होंने स्वयं कहा है—

मिलन्तु चिन्तामणि कोटि कोटयः
स्वयं बहिर्दृष्टिमुपैतु वा हरिः।
तथापि वृन्दावन धूलिधूसरं
न देहमन्यत्र कदापि यातु मे॥

अर्थात् 'यदि कदाचित् श्रीवृन्दावन से अन्यत्र मुझे कोटि-कोटि चिन्तामणि ही क्यों न दृष्टि-गोचर हों, अथवा स्वयं श्रीकृष्ण भी क्यों न दृष्टि-गोचर हो रहे हों किन्तु मैं उनकी ओर दृष्टि तक न करूंगा वरन् श्रीवृन्दावन में ही मेरा देह धूलि-धूसरित होता रहेगा अन्यत्र कदापि न जावेगा।'

इसके विपरीत श्रीहित हरिवंश महाप्रभु कहते हैं—

यत्र यत्र मम जन्म कर्मभिर्नारकेथ परमे पदेथ वा।
राधिका रति निकुञ्ज मण्डली तत्र तत्र हृदि मे विराजताम्॥

अर्थात् 'अपने जन्म-कर्मानुसार मुझे नरक किंवा स्वर्ग परम-पद आदि कहीं भी क्यों न जाना पड़े किन्तु सर्वत्र श्रीराधिका-रति-निकुञ्ज-मण्डली मेरे हृदय में विराजमान् रहे।'

इन दोनों वाक्यों में कितना अन्तर है। एक तो श्रीवृन्दावन के बिना श्रीराधाकृष्ण को भी स्वीकार नहीं करते, उनकी ओर देखना नहीं चाहते और दूसरे श्रीराधिका-निकुञ्जमण्डली के हृदयस्थ होने पर नरक और परम-पद में जाना स्वीकार करते हैं। यहाँ विचारणीय बात इतनी ही है कि इन दो विरोधी वाक्यों का एक व्यक्ति के मुख से कैसे समर्थन हो सकता है। इससे सिद्ध होता है कि दोनों व्यक्ति अलग-अलग निष्ठाओं के व्यक्ति हैं। और उनकी रचनाएँ भी भिन्न-भिन्न हैं। उनमें से "श्रीवृन्दावन महिमामृतम्" श्रीप्रबोधानन्द पाद की रचना है और 'श्रीराधा-सुधा-निधि' श्रीहित हरिवंशचन्द्र महाप्रभु की।

(२) 'वैष्णव फेथ एण्ड मूव्हमेंट इन बेङ्गाल' अर्थात् "बंगाल में वैष्णव भक्ति सम्प्रदाय का आन्दोलन" के सम्भ्रांत लेखक हैं ढाका विश्व-विद्यालय संस्कृत-विभाग के हेड श्रीयुत् सुशीलकुमार दे (एम० ए० डी० लिट्)। आप अपनी उक्त पुस्तक के पृष्ठ ६६ के फुट-नोट में इस प्रकार लिखते हैं—

In the book—"**Early History of the Vaisnava Faith and Movement in Bengal**" by—Sushil Kumar De, M. A,, (Caluutta', D. Lit, London). Professor and Head of Department of Sanskrit, University of Dacca; and published by—Suresh C. Das, M. A. from General Pridters and Publishers Ltd., and printed by him at their works—Abinas Press—119 Dharamtala St., Calcutta; the author) (S. K De) writes on the page 99 the third foot note as follows—

"**The Stotra-Kavya**, named-Radha-Rasa-Sudhanidhi, printed in two parts from the Bhakti-prabha Office, Hugli 1924, 1935, Prabodhananda. The first and the last verses of is wrongly ascribed to the printed text pay homage—to Chaita- nya but hese verses are missingin the MSS noticed by Eggeling) (India Office Catalogue, vii pp. 1464-65), Aufrecht (Bodleian Catalogue. P. 131. No. 239) Haraprasad Sastri (Descriptive

Catalogue of ASB Collection, vii, p. 230 and Notices, 2nd Series i p 384), while the work is uniformly ascribed in these and other MSS to Hitaharivansa, son of Vyasa. It is obviously a case of appropriation by the Chaitanya sect of a work composed by Hitaharivansa of the Radhavallobhi sect !❀"

अर्थात् 'स्तोत्र-काव्य' जिसका कि नाम "श्रीराधा-सुधा-निधि" है और जो दो भागों में "भक्ति ऑफीस हुगली" से सन् १९२४ ई० और सन् १९३५ ई० में छपा है–गलत ढंग से प्रबोधानन्दजी का बतलाया गया है। इस छपी हुई पुस्तक के प्रथम और अन्तिम श्लोक शब्द श्रीचैतन्य की वन्दना के

❀ ध्यान-पूर्वक देखिये :—

श्रीसुशील कुमार दे महाशय अपनी इसी पुस्तक "वैष्णव फेथ एण्ड मूव्हमेण्ट इन बेंगाल" (जो कि रिसर्च की पुस्तक है अर्थात् साहित्य की खोज करके यथातथ्य तत्त्व का उद्घाटन करने के लिये ही लिखी गई है) में और भी क्या-क्या लिख रहे हैं।

(१) पृष्ठ–७६, फुट नोट नं० १—

"उड़ान-छू ढंग से यह भी बहुधा कहा जाता है कि वैष्णव-सम्प्रदाय के चालक श्रीवल्लभाचार्य (या वल्लभ दीक्षित) प्रयाग और पुरी में श्रीचैतन्यदेव से मिलने आये थे [चैतन्य चरितामृत, मध्य × I×, ६१-११३]। इस बात की यथार्थता प्राप्त करने के सन्तोषजनक कोई प्रमाण नहीं हैं। वरं श्रीचैतन्य के चरित्र (Biography) में प्रयाग और पुरी के दर्शनार्थी वैष्णव—अड़ेल गांव के एक वैदिक ब्राह्मण वल्लभ भट्ट का नाम दिया गया है। वह ब्राह्मण प्रसिद्ध आचार्य श्रीवल्लभाचार्य्य ही थे इसके लिये वहाँ पर कोई उल्लेख नहीं है। इस बात के प्रमाण में अनेकों प्रसङ्ग हैं, जो दे महाशय के ग्रन्थ में ही देखे जा सकते हैं।

(२) [i] पृष्ठ ३४ फुट नोट नं० ३—

कवि कर्णपूरकृत "गौर-गणोद्देश दीपिका" नामक ग्रन्थ का सम्पादन राधारमण-प्रेस, बरहामपुर (मुर्शिदाबाद) से हुआ है। इस ग्रन्थ की निर्माण-तिथियाँ भिन्न-भिन्न प्रतियों में भिन्न-भिन्न हैं। जैसे आफ्रेक्ट केटलॉग में शाके १४९८ है, तो एगलिग केटलॉग में कुछ और ही अर्थात् शाके १४६६ है, इसी प्रकार अन्यत्र और ही कुछ है।

है लेकिन ये छन्द उन हस्तलिखित प्रतियों में नहीं हैं, जिनका उल्लेख [१] एग्लिङ्ग (Eggeling) ने इण्डिया-आफिस केटलॉग नं० ७ पेज १४६४-६५; [२] आफरेक्ट (Aufrecht) ने बार्लियन केटलॉग नं० २३९ पेज १३१ में

[ii] पृष्ठ ९७, फुट नोट नं० २—

ऐसे ही, राधारमण प्रेस बरहामपुर (मुर्शिदाबाद) के द्वारा सम्पादित सन् १९२६ ईस्वी में प्रकाशित 'चैतन्य-चन्द्रामृत' के श्लोकों की संख्या अन्यान्य केटलॉगों के मिलान करने पर भिन्न-भिन्न प्राप्त होती है। कहीं १४१ श्लोक तो कहीं १४३ हैं। कहीं १४४ भी हैं। उनमें पाठ (Text) भी भिन्न-भिन्न मिलते हैं।

[iii] पृष्ठ ६९, फुट नोट नं० ३—

उसी राधारमण-प्रेस के द्वारा सन् १९२१ ईस्वी में श्रीलोचनदास रचित पदों का बङ्ग-भाषा में सम्पादन हुआ है। उस पदावली में श्रीरामानन्द राय का केवल एक भक्ति-परक पद (नानोचार-कृत-पूजन) उद्धृत् किया गया है, किन्तु यह पद 'कबि कर्णपूर' के काव्य में भी दिया गया है। तिस पर मजा यह है कि साथ ही यह पद कृष्णदास कविराज–रचित श्रीचैतन्य-चरित्र मध्य viii ७०) में चैतन्य और रामानन्द राय के कथोपकथन प्रसङ्ग में भी दिया गया है।

यह तो हुई राधारमण-प्रेस की बातें। अब इधर दूसरी ओर भी देखिये—

(२) [i] पृष्ठ १६६; फुट नोट नं० १–(इसी का विवरण और भी पृष्ठ ११७ फुट नोट ४ में भी दिया गया है।)

अभी हाल ही में "भक्ति रसामृत शेष" नामक ग्रन्थ खोजकर छपाया गया है। इसका सम्पादन बंगला भाषा में श्रीजुक्त हरिदासदास हरिबोल-कुटीर नवद्वीप ने सन् १९४१ ईस्वी में किया है। इस ग्रन्थ को श्रीजीव गोस्वामी कृत बताया गया है और इसका रचनाकाल शाके १६१८ (शकेवस्वे कर्णविधौ) सन् १६९६ ईस्वी बताया गया है परन्तु श्रीजीव गोस्वामी उस समय धराधाम पर ही न थे। लगभग सौ वर्ष पूर्व ही श्रीगोलोकधाम पधार चुके थे।

इस ग्रन्थ की गिनती (भक्ति) रस-ग्रन्थों में कराई गई है किन्तु वास्तव में यह ग्रन्थ काव्य-रस का है। इसकी रचना साहित्य-दर्पण', कवि कर्णपूर

और [३] श्रीहरप्रसादजी शास्त्री ने डिस्क्रेप्टिभ केटलॉग आफ (A. S. B.) कलेक्शन नं० ७ पेज २३० और नोटिसेज सेकण्ड नं० १ पेज ३८४ में किया है। इन सब और इसके अतिरिक्त हस्त-लिखित प्रतियों में यह ग्रन्थ व्यास के पुत्र हित हरिवंशजी का रचित लिखा हुआ है।

यह स्पष्ट है कि यह मामला वह है, जिसमें चैतन्य सम्प्रदायवाले राधावल्लभीय सम्प्रदाय के हित हरिवंशजी द्वारा रचित एक ग्रंथ को हड़प करना चाहते हैं।"

कृत 'अलङ्कार-कौस्तुभ' और श्रीबलदेव विद्याभूषण रचित 'ममता' की टिप्पणी 'साहित्य-कौमिदी' के अंशों को जोड़-तोड़कर की गई है। रचयिता ने अन्यान्य वैष्णवों के शब्दों और भावों को तोड़-मरोड़कर अपने ग्रन्थ में भरा है। यथा—

निःशेष च्युत कन्दलम् ['ममता']

इस प्राचीन प्रसिद्ध पद्य का अपने ग्रन्थ में येन-केन प्रकारेण लाभ उठाने के लिये इस प्रकार बनाया गया है—

'सत्यं जल्पसि गोपीवन्धु जनतावञ्चि क्रियाद्यञ्चिते।
कृष्णं स्नातुं इतो गतासि न पुनस्तं गोपिका कामुकम्॥"

देख ली ग्रन्थ की वास्तविकता ?

[ii] पृष्ठ ३६५; फुट नोट नं० १—

श्रीदे महाशय के ही शब्दों में ही पढ़िये—

"Information, however, is supplied by Srijut Haridas Das of Navdwipa that M. S. of a Brahat Krishnarchan Dipiba by Jiv Goswami in his possession".

अर्थात् 'मुझे श्रीयुक्त हरिदास दास नवद्वीप के द्वारा सूचना प्राप्त हो चुकी है' कि जीवगोस्वामी कृत 'बृहद्कृष्णार्चन दीपिका' उनके हस्तगत हो चुकी है।

श्रीदे महाशय के इस, अनुसन्धान-पूर्ण लेख को पाठक देखें और श्रीचैतन्य के निर्मल यश में कलङ्क लगाने वाले उनके मतानुयायी भी। यदि उन्हें उचित जचे तो अपनी भूल का सुधार भी करलें। अब हम तीसरा प्रमाण उपस्थित करते हैं।

(३) श्रीराधावल्लभीय वैष्णवों के पास श्रीराधा-सुधा-निधि की बहुत-सी प्राचीन प्रतियाँ हैं जो व्यास-नन्दन श्रीहित हरिवंश कृत लिखी हैं। उनकी श्लोक-संख्या भी दो सौ सत्तर (२७०) ही है। उनमें से कुछ प्रतियों का हम यहाँ पता दे रहे हैं, जिन्हें देखना अभीष्ट हो देख सकते हैं—

(i) श्रीबनवारीलालजी पचौरी अलीगढ़ के यहाँ सम्वत् १७५७ वि० की हस्तलिखित प्रति जो आज से २५३ वर्ष पूर्व की है। श्रीहित हरिवंश कृत ही है उसमें लिखा है।

(ii) श्रीबैजनाथजो बाबा (झांसी वाले) श्रीधाम वृन्दावन के पास सम्वत् १७८६ वि. की हस्त-लिखित प्रति है जो आज से दो सो सोलह वर्ष पूर्व की है।

(iii) तीसरी प्रति श्री श्रीगोस्वामी श्रीवृन्दावनवल्लभजी महाराज श्रृङ्गार-सेवाधिकारो श्रीराधावल्लभीय सम्प्रदायाचार्य्य श्रीधाम वृन्दावन के यहाँ भी एक प्रति २५७ वर्ष की प्राचीन है।

(४) इस ग्रंथ पर श्रीराधावल्लभीय सम्प्रदाय के महात्माओं के द्वारा

उपरोक्त विवरण-पूर्ण टिप्पणी से विज्ञ पाठक भली प्रकार समझ सकेंगे कि श्रीदे महोदय के कथन में कितनी स्पष्टता से गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय की धींगा-मस्ती नजर आ रही है। जो केवल उलटा-पलटी ही जानते हैं। वे यदि 'श्रीरस-सुधा-निधि' को श्रीप्रबोधानन्द-कृत कह दें तो आश्चर्य ही क्या है? उनकी इस सज्जनता के लिये उन्हें धन्यवाद !

—भूमिका लेखक

जो-जो टीकाएँ लिखी गई हैं। उनसे भी इस सम्प्रदाय और ग्रंथ के तादात्म्य एवं इष्टता का परिचय मिलता है। हम यहाँ कुछ टीकाओं का परिचय देते हैं—

सं.	टीकाकार	टीका परिचय	टीका-काल
१.	श्रीतुलसीदासजी (गोस्वामी श्रीसुखलालजी महाराज के शिष्य)	ब्रजभाषा पद्य (ह. लि.)	सं. १७७० वि.
२.	श्रीसन्तदास जी श्रीदामोदरवरजी के शिष्य)	,, पद्य (ह. लि.)	वि. अठारहवी सदी
३.	श्रीवृन्दावन दासजी (गोस्वामी श्रीरूपलालजी महाराज के शिष्य)	,, ,, (ह. लि.)	सं. १८२० वि.
४.	श्रीनरोत्तमजी (गोस्वामी श्रीकृपालालजी महाराज के शिष्य)	संस्कृत (प्रकाशित) श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस बम्बई)	सं. १८३० वि.
५.	श्रीहितदासजी (श्रीभोरी सखीजी के शिष्य)	संस्कृत अन्वय सहित पद्य ब्रज भाषा (ह. लि.)	सं. १८३२ वि.
६.	श्रीहरिलालजी व्यास	संस्कृत वृहद् रसकुल्या (ह. लि.)	सं. १८६० वि.
७.	,,	मध्य व्याख्या (,,)	पश्चात् क्रम
८.	,,	लघु व्याख्या (,,)	श: १९०० तक
९.	श्रीलोकनाथजी	ब्रजभाषा गद्य (ह. लि.)	सं. १९०० वि.
१०.	श्रीलड़ैतीलालजी	पद्य (प्रकाशित)	सं. १९२८ वि.

इनके अतिरिक्त और भी टीकाएँ है जो स्थान-संकोच से यहाँ नहीं लिखी जा सकतीं। इन सब प्रमाणों के अतिरिक्त अब हम एक और भी अत्यन्त पुष्ट प्रमाण उपस्थित करके अपनी लेखनी को विश्राम देंगे। इस प्रमाण के जौहर को भी पाठक देखें कि यह किस प्रकार इन षड्यंत्रकारी साहित्यिक चोरों के माया-जाल का विनाश करता है—

(५) 'प्रेम-पत्तनम्' नामक संस्कृत का एक बड़ा ही सुन्दर ग्रन्थ है इसके रचयिता हैं श्रीश्रीगदाधर भट्टात्मज श्रीरसिकोत्तंसजी महाराज। ये श्रीगदाधर भट्टजी तत्कालीन वृन्दावनस्थ महात्मागण श्रीहित हरिवंश महाप्रभु, श्रीस्वामी हरिदासजी, श्रीरूपसनातन जी, श्रीप्रबोधानन्द जी, श्रीगोपालभट्ट प्रभृति रसिकों के समकालीन हैं।

उक्त ग्रन्थ 'प्रेम-पत्तनम्' का प्रकाशन 'अच्युत-ग्रंथ-माला काशी' से सम्वत् १९८९ वि. में हुआ है। इसके सम्पादन-कर्त्ता हैं श्रीयुत् श्रीकृष्ण-पन्त शास्त्री। श्रीशास्त्रीजी अपनी गवेषणापूर्ण भूमिका में अनेक पुष्ट प्रमाणों से श्रीरसिकोत्तंस जी का जन्म-काल सम्वत् १६५९ विक्रम निर्धारित करते हैं। जो आज से ३१० वर्ष पूर्व हैं। इस प्रकार 'प्रेम-पत्तनम्' ग्रंथ का रचना काल २५० वर्ष पूर्व ही स्वीकार करना पड़ेगा।

इस प्रेम-पत्तनम् ग्रंथ में ग्रन्थकार ने कई स्थलों पर प्रेम-सिद्धान्त की पुष्टि के लिये अनेक-अनेक महात्माओं के वाक्यों का उद्धरण दिया है। उसमें से एक प्रसङ्ग यहाँ अविकल रूप से लिखा जाता है जिससे अपने आप ही यह सिद्ध हो जाता है कि श्रीराधा-सुधा-निधि' ग्रन्थ श्रीहितहरिवंशचन्द्र गोस्वामी कृत है। पाठक उसे देखें—

"यत्राधर्म एव धर्मः स्थापितः ॥१४॥" (प्रेम पत्तनम्)

१. तदुक्तं श्रीभगवतैव गीतायाम्—

"सर्वधर्म्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥"

२. तथैवोक्त प्रथमे—

"त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणाम्बुजं हरेः" इति॥

(श्रीमद्भागवत स्क० १ अध्याय ५)

३. तथैवोक्तमेकादशे —

"देवर्षिभूताप्त नृणां पितृणामिति"

तदुक्तं दशमे उद्धवेन—

"आसामहो चरणरेणु जुषामहं स्यां। इति"।

४. तथैवोक्तं सतीसमूह-सेवित पदाब्ज-रजोभिः श्रीव्रजसीमन्तिनीभिः—

"यत्पत्यपत्य सुहृदामनुवृत्तिरङ्ग" इति।

५. तथा पुनस्ताभिरेवोक्तम्—

"यर्ह्यम्बुजाक्ष तव पादतलं रमायाः" इति।

६. पुनरपि ताभिरेवोक्तम्—

"कास्त्र्यङ्गते कलपदायत वेणुगीत संमोहिता" इति।

७. तथोक्तं श्रीमन्महाप्रभुपादैः—

"नाहं विप्रो नच नरपतिर्नापि वैश्यो न शूद्रो,
नो वा वर्णी न च गृहपतिर्नो वनस्थो यतिर्वा।
किन्तु प्रोद्यन्निखिल परमानन्द पूर्णामृताब्धे,
गोपीभर्त्तुः पदकमलयोर्दास दासानुदासः" इति॥

८ तथैवोक्तं श्रीगोस्वामि श्रीहरिवंश महानुभावैः—

"कैशोराद्भुत माधुरीभर धुरीणाङ्गच्छविं राधिकां
प्रेमोल्लास भराधिकां निरवधि ध्यायन्तिये तद्धियः।
त्यक्ताः कर्मभिरात्मनैव भगवद्धर्म्मेप्यहो निर्ममाः।
सर्वाश्चर्यगतिंगता रसमयीं तेभ्यो महद्भ्योनमः' इति॥

—(श्रीराधा-सुधा-निधि)

९. तथोक्तं तैरेव—

"लिखन्ति भुजमूलयोर्न खलु शङ्ख चक्रादिकं,
विचित्र हरिमन्दिरं न रचयन्ति भाल-स्थले।
लसत्तुलसिमालिकां दधति कण्ठपीठे न वा,
गुरोर्भजन विक्रमात् क इह ते महा बुद्धयः ॥" इति

(श्रीराधा-सुधा-निधि)

१०. तथोक्तं श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ति महाशयैः दानकेलि-कौमुदी टीकायाम्—

"दानकेलि कलौ लुप्त धर्म्ममर्य्यादयोर्भजे।
राधामाधवयोः काम लोभ दम्भ मदानृतम् ॥" इति

११. तथोक्तं श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती पादैः—

"कुरु सकलमधर्मं मुञ्च सर्वं च धर्मं,
गुरुमपि त्यज वृन्दारण्य वासानुरोधात्।
स तव परमधर्मः साच भक्तिर्गुरूणां,
सकल कलुष राशिर्यद्धि वासान्तरायः ॥" इति

(श्रीवृन्दावन महिमामृतम्)

१२. तथा स्कान्दे—

धर्म्मो भवत्यधर्म्मोऽपि कृतो भक्तैस्तवाच्युत।
पापं भवति धर्म्मोऽपि तवाभक्तैः कृता हरे ॥" इति।

(रेवा-खण्डे स्कान्दे)

....इत्यादि।

उक्त प्रसङ्ग में आठवें और नवें नम्बर के प्रमाण श्रीगोस्वामी श्रीहरिवंश महानुभाव के हैं। इसे प्रेम-पत्तनम् ग्रन्थकार लिख रहे हैं—

८ "तथैवोक्तं श्रीगोस्वामि श्रीहरिवंश महानुभावैः"—

अर्थात् 'इसी प्रकार गोस्वामी श्रीहरिवंश महानुभाव कहते हैं।'

एवं—

६ तथोक्तं तैरेव—

अर्थात् 'फिर भी वही (गोस्वामी श्रीहरिवंश) महानुभाव कहते हैं।'

तत्पश्चात् उनके कथन के प्रमाण में श्रीराधा-सुधा-निधि के ८० (अस्सी) और ८१ (इक्यासी) संख्या के श्लोक क्रमशः—

(८) "कैशोराद्भुत माधुरी..
....
.... महद्भ्यो नमः" ॥

और

(६) "लिखंति...
....
....महाबुद्धयः" ॥

श्रीरसिकोत्तंसजी प्रमाण रूप में उद्धृत करते हैं। अब इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं रहा कि 'श्रीराधा-सुधा-निधि' स्तोत्र-काव्य श्रीहित हरिवंश गोस्वामी का है और श्रीप्रबोधानन्दजी सरस्वती का नहीं है। इससे प्राचीन और सम्भ्रान्त प्रमाण क्या होगा कि आज से ३०० तीन सौ वर्ष पूर्व श्रीरसिकोत्तंसजी अपनी लेखनी से 'श्रीराधा-सुधा-निधि' को श्रीगोस्वामी श्रीहरिवंश-कृत स्वीकार कर रहे हैं।

दूसरी बात पाठकों के ध्यान देने योग्य और भी है कि इसी स्थल में ग्यारहवें प्रमाण में श्रीप्रबोधानन्दपाद का श्लोक श्रीवृन्दावन-महिमामृत से उदाहरण रूप में श्रीरसिकोत्तंसजी लेते हैं। आप लिखते हैं—

११ तथोक्तं श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती पादैः—

अर्थात् 'इसी प्रकार श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती चरण कहते हैं'।

कुरु सकलमधर्मं..
....
....
....वासान्तरायः ॥

अब यहाँ विचारणीय केवल इतना ही है कि प्रमाणों में श्रीहरिवंश गोस्वामी और श्रीप्रबोधानन्दपाद दो महानुभावों के श्लोक अलग-अलग देकर लिखे गये हैं अर्थात् दोनों की रचनायें भिन्न-भिन्न हैं। यदि श्रीराधा-सुधा-निधि की रचना श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीपाद के द्वारा हुई होती तो जहाँ पर 'कुरु सकलमधर्मं ....' प्रमाण श्रीप्रबोधानन्दपाद का दिया गया है; वहीं पर 'कैशोराद्भुत माधुरी ....' और 'लिखन्ति भुज........' ये दोनों श्लोक भी श्रीहरिवंश महानुभाव के नाम से न लिखे जाकर श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती महाशय के नाम लिख दिये जाते। किन्तु जब दोनों के नाम अलग-अलग देकर उनकी रचनाओं का उल्लेख किया गया है तब तो बिल्कुल ही स्पष्ट हो जाता है कि श्रीराधा-सुधा-निधि स्तोत्र-काव्य श्रीहित हरिवंश गोस्वामि-पाद-विरचित है। श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीपाद विरचित कदापि नहीं है। इसके ज्वलन्त प्रमाण श्रीरसिकोत्तंसजी महानुभाव हैं। जिनके सम्बन्ध में सभी विद्वत्समाज एवं भक्त-समाज यह स्वीकार करता है कि अपने समय के वे एक सम्भ्रान्त विद्वान् एवं सद्भक्त ही नहीं श्रीवृन्दावन-रस के सुज्ञाता रसिक थे। मुझे यह कहने में सङ्कोच न होगा कि वे आज के कतिपय तिलकधारी वैष्णवों के समान साहित्यिक चोर और ठग नहीं थे। अथवा "लम्बा तिलक अरु मधुरी बानी। दगाबाज की यही निशानी"। को चरितार्थ करने वाले गोमुख व्याघ्र नहीं थे। वे सत्य सेवी, सत्य परायण थे। यद्यपि वे भी चैतन्य-चरणानुयायी थे पर आजकल के कुछ श्रीचैतन्य-चरणानुयायियों के सदृश श्रीचैतन्य के प्रेम और नाम को कलङ्कित करने वाले नहीं, अपितु उसे शोभा, श्री और यश प्रदान करने वाले थे, अस्तु।

इस भूमिका के द्वारा मानों श्रीचैतन्य-मतानुयायी उन समस्त वैष्णवों, सन्तों एवं आचार्य्यों को सूचित किया जाता है जो श्रीराधा-सुधा-निधि के आदि-अन्त्य दो श्लोक बढ़ाकर उसे श्रीप्रबोधानन्द कृत बताने की सनक में बावले हो रहे हैं। वे अपनी नीचता से श्रीप्रबोधानन्दपाद को क्यों अपयश-पात्र बना रहे हैं। आप लोगों की इस तुच्छ एवं नीच-क्रिया का कोई सज्जन पुरुष सम्मान न करेगा अतएव प्रार्थना की जाती है कि अब भी अपनी आदतों से बाज आइये और कम से कम अपने वेश की लज्जा को तो बचाइये ? अन्यथा 'दण्डेन गो गर्दभौ' की नीति न आजाय ? साथ-साथ कानूनन कार्यवाही यदि इस ओर से प्रारम्भ कर दी जाय तो कोई आश्चर्य्य नहीं।

अस्तु; विज्ञजन हमारी इस अभद्रता को क्षमा करें, जो सङ्गते सङ्ग दोषेण उत्पन्न हुई । न सही शारीरिक सङ्ग, मानसिक तो हो ही गया । आप तो हमारी इन बातों को भूलकर श्रीराधा-सुधा-निधि का अवगाहन करें । इस खड़ी हिन्दी के साहित्यिक युग में श्रीराधा-सुधा-निधि जैसे रस-मय काव्य का हिन्दी-अनुवाद अभी तक नहीं हो पाया था तब फिर उसे इतने सरल रूप में उपलब्ध करा देने का यह अनुवादक महोदय का प्रयत्न स्तुत्य क्यों न कहा जायगा ? अनुवाद की उत्कृष्टता तो विज्ञजन ही जानेंगे । हाँ इतना अवश्य है कि श्रीराधा-सुधा-निधि के गम्भीर रस को थोड़े शब्दों में प्रकट करने के लिये प्रायः संस्कृत-गर्भित भाषा का उपयोग किया गया है; क्योंकि भाव-व्यञ्जना के लिये इसके सिवाय और कोई गति ही नहीं थी ।

इस ग्रन्थ में पूरे (२७०) दो सौ सत्तर श्लोक हैं और उनमें से प्रत्येक मूल के साथ प्रथम सङ्केत में जो कुछ कहा गया है, वह श्लोक के विषय में सहायक है और भावार्थ में मूल श्लोक का यथामति भाव-प्रकाश किया गया है । भावार्थ लिखने में अनुवादक महोदय ने जो शैली बरती है उससे मुझे ऐसी आशा है कि संस्कृत व्याकरण ज्ञान-हीन पाठकों को भी श्लोकों के मूल को समझने में पर्याप्त सहायता मिलेगी । मुझे विश्वास है कि इस टीका से हिन्दी के छोटे-बड़े सभी साहित्य-प्रेमियों को सुख एवं रस प्राप्त होगा और रसिक महानुभावों की तो यह अपनी वस्तु ही है । क्योंकि ग्रन्थ स्वयं 'यथा नामः तथा गुणः' है । अलमतिविस्तरेण ।

भवदीय—

निकुञ्जवासी

बाबा [हित] वंशीदास

राधावल्लभीय

[हित-गढ़] बाद-ग्राम

ता० २२-११-१९४८ ई०

श्रीवृन्दावन



।। श्रीमतेरामानन्दाचार्याय नमः।। ।। श्री राम कृष्णाभ्यां नमः ।। ।। वन्देमलूकदासार्यं द्वाराचार्यं जगद्गुरुम् ।।

।। श्री सुरभ्यै नमः ।।

श्री मलूक पीठ सेवा संस्थान न्यास, वृन्दावन

श्री मलूक पीठ, वंशीवट, वृन्दावन (मथुरा) - 281121

अध्यक्ष :
जगद्गुरु द्वाराचार्य, मलूक पीठाधीश्वर
श्री राजेन्द्रदास देवाचार्य जी महाराज फोन : 0565-6454808

॥ तं राधिकाचरणरेणु मनुस्मरामि ॥

अखिल लोक चूड़ामणि धरणिमण्डल मण्डन श्री राधावल्लभलालजू के अधर सुधारसपायी 'वंशी' ने जो अधर से संश्लिष्ट होकर जो श्रीराधा नामरूप लीला रस वैभव को प्राप्त किया उसी को रसिक जनों को श्री राधारस सुधानिधि के रूप में प्रदान कर कृतकृत्य किया ।

रसिकाचार्य कुलचक्र चूडामणि श्री युगल प्रेम स्वरूपा वंशी अवतारी श्रीहित सजनी महाप्रभु श्रीहित हरिवंश जी के रूप में अवतरित होकर श्रीराधारससुधानिधि के रूप में श्रीराधारस वैभव को प्रकट किया । श्रीहितकृपामूर्ति भक्तमाली स्वामी हितदास जी के द्वारा अत्यन्त सरल सुबोध भावगम्य शैली में अपने हरिरस का श्रीहित महाप्रभु ने प्रकाश कराया ।

इस रसमयी प्राञ्जल टीका का पुनः प्रकाशन कर परम रसिक श्रीहित कमलदासजी ने आर्चायगुरुनिष्ठा का तो प्रकाश किया ही साथ ही साथ रसिकों का आत्मरञ्जन भी ।

श्री जी का परमानुग्रह इस ग्रन्थराज के अनुशीलन से सभी रसिकों को प्राप्त हो ऐसी प्रार्थना के साथ-

दासानुदास-
राजेन्द्रदास
श्री मलूक पीठ
वंशीवट, वृन्दावन

श्री गुरूवे नम:

निवेदन

श्री राधा सुधा निधि संस्कृत काव्य वृन्दावनीय रसोपासना का प्राण है जिसके रचयिता महाप्रभु श्रीहितहरिवंश जी ने अपने हार्द को इस ग्रंथ के माध्यम से प्रगट किया है, वैसे तो यह ग्रंथ सभी संप्रदायों के रसोपासकों का कंठहार रहा है, पर निश्चय ही यह राधावल्लभीय उपासकों का हृदय धन है । इसी कारण ग्रंथ के प्राकट्य के समय से आज तक सैकड़ों टीकाऐं लिखी जा चुकी हैं । हमारे दादागुरू श्रीहितकृपा मूर्ति स्वामी श्रीहितदास जी महाराज ने इसकी हिन्दी टीका सर्वप्रथम सन् 1950 ई. में लिखी थी, और यह नर्मदा प्रिंटिंग पेस जबलपुर से प्रकाशित हुई थी, उस समय इस ग्रंथ का प्रकाशन ठा. श्री रूँगूसिंह जी परिहार बिलासपुर वालों ने कराया था, इस ग्रंथ का द्वितीय संस्करण सन् 1992 श्री राधाष्टमी पर हुआ, जिसका सारा श्रेय परम साध्वी संतमाता श्री धर्मवतीदेवी राधावल्लभीय को है । आज पुन: इस ग्रंथ को प्रकाशित करने की आवश्यकता हुई, और यह सौभाग्य हमारे हित साहित्य प्रकाशन को मिल रहा है, और सबसे बड़ी खुशी की बात यह है कि यह ग्रंथ महाराजश्री के 97 जन्मोत्सव द्वितीय शरद पर मलूक पीठाधीश्वर जगद्गुरु श्री राजेन्द्राचार्य जी के हस्त कमल द्वारा विमोचित होगा। इस ग्रंथ के प्रकाशन में मेरे गुरुभ्राता जो अत्यन्त ही भजनानंदी, मृदुभाषी, और अंतरंग रस में डूबे हुये हैं उनके ही किसी कृपापात्र ने, जो अपना नाम प्रगट नहीं करना चाहते, यह संपूर्ण सेवा उन्हीं की तरफ से है । मेरी संपूर्ण मंगल कामना और आशीर्वाद उनके साथ है, श्री जी उनके भजन में अधिक से अधिक वृद्धि करके इसी तरह अपनी सेवा लेती रहें ।

श्री हित अम्बरीश जी वृन्दावनीय मदनटेर निवासी ने इस ग्रंथ के ऊपर अपना प्राक्कथन लिखा, हम उनके बहुत आभारी हैं, श्री राधा सुधा निधि जैसे ग्रंथ के वे स्वयं अधिकारी विद्वान और कुशल वक्ता हैं, उनका सहयोग हमेशा से हमारे आश्रम से रहा है, मेरी उनके लिये हृदय से मंगल कामना है ।

मेरी गुरु बहिन परम साध्वी हितप्रिया किंकरी जो हमारे ट्रस्ट की सचिव हैं । और मेरे बड़े गुरुभ्राताश्री नागरीदास जी जो ट्रस्ट के उपाध्यक्ष है, इनकी भी बड़ी सद्भावना है और ये हमेशा नये ग्रंथ के प्रकाशन में पूर्ण सहयोग और रुचि लेते रहते हैं, मैं इनका अत्यंत आभारी हूँ ।

अंत में श्री राधा प्रेस के संचालक श्री वंशीवल्लभ शर्मा को धन्यवाद देता हूँ, जिनने इतने अल्प समय में इस ग्रंथ कामुद्रण कर दिया।

दासानुदास
श्री कमलदास

प्राक्कथन

राधैवेष्टं, संप्रदयैकर्ताचार्यो राधा मन्त्रदः सद्गुरुश्च,
मन्त्रो राधा यस्य सर्वात्मनैनं वन्दे राधापादपद्मप्रधानम् ।।

''अर्थात्, श्रीराधा ही जिनकी इष्ट हैं, जिनके सम्प्रदाय की मुख्य प्रवर्तक और आचार्य भी श्रीराधा ही हैं, श्रीराधा ही जिनकी मन्त्रदाता श्रेष्ठ दीक्षा गुरु हैं, राधा शब्द ही जिनकी मन्त्र है, प्रधान रूप से श्रीराधा चरणारविन्द मधुप उन श्रीहित महाप्रभु की मैं सब प्रकार से वन्दना करता हूँ ।''

उपासक जब सर्वतोभावेन उपास्य के प्रति समर्पित होता है तो उपास्य भी सब प्रकार से अपना माधुर्य और ऐश्वर्य प्रीति प्रसाद के रूप में उपासक को प्रदान करता है । सर्वाद्य रसिकजन वन्दित चरण, श्रीहित हरिवंश महाप्रभु ने अपनी आराध्या श्री वृन्दावन नाथ पट्टमहिषी स्वामिनी श्रीराधा का जो गुण गौरव, जो माधुर्य विभु, जो अपरूप स्वरूप श्रीराधा रस सुधा निधि के माध्यम से प्रकट–प्रकीर्तित किया वह अपने आप में विलक्षण है। काव्य की दृष्टि से यह ग्रन्थ अद्भुत कान्ति मुक्तक-मोतियों की मञ्जूषा है, तो रसिकों के लिए तो स्वयं पूर्णानुरागरससागर सार मूर्ति श्रीराधा का वाङ्मय स्वरूप ही है ।

यह मुक्तक काव्य केवल एक रसमय काव्य ही नहीं, किन्तु हित शास्त्र भी है । श्रीराधावल्लभ सम्प्रदाय का प्रमुख सिद्धान्त युगल की सतत् सेवा है, श्री किशोरी जी का कैंकर्य है । सेवा अर्थात् जो सेव्य की इच्छा के अनुकूल एवं स्वरूप के अनुरूप हो । श्रीहित महाप्रभु की आराध्या वृन्दावनेश्वरी स्वामिनी श्रीराधा का स्वरूप सम्यक् प्रकार से समझे बिना, उनके सेवा भाव में स्थिति नितांत असम्भव है । उनके उस परम दुरूह, ब्रह्मादिकों को भी दुर्लभ स्वरूप को समझना एक मात्र उनकी कृपा से ही

सम्भव है एवम् श्रीराधा रस सुधा निधि, हित स्वामिनी की साक्षात् कृपा मूर्ति ही है, रसिकजनों के लिए साक्षात् प्रिया जी का प्रीति प्रसाद है, एक अधिष्ठान है । श्रीमद् सुधा निधि के माध्यम से, जहां श्रीहित महाप्रभु अपनी उपास्या के स्वरूप का वर्णन करते हैं, वहीं उपासना का मार्ग भी देते हैं, जहां उनकी नित्य केलि की दिव्यता का वर्णन करते हैं, वहीं उसका दर्शन करने के लिए जिस पूर्ण परिष्कृत भाव की आवश्यकता है, उसका भी स्पष्ट निर्देश कर देते हैं । जहां एक ओर **''क्वासौ राधा निगमपदवी दूरगा कुत्र चासौ, कृष्णस्तस्याः कुच कमलयोरन्तरैकान्त वासः ।''** कहकर अपने आराध्य युगल का उत्कर्ष गान करते हैं, उसे परम दुर्लभ बताते हैं, वहीं **''यत्तन्नाम स्फुरति महिमा एष वृन्दावनस्य ॥''** कहकर, श्री वृन्दावन के सहज आश्रय का निर्देश करके एक सुन्दर-सुलभ अवलम्बन भी प्रदान कर देते हैं । जहां श्रीप्रिया जी की श्री चरण रेणु कणिका को **''ब्रह्मेश्वरादि सुदुरूह पदारविन्द''** कह देते हैं, वहीं प्रिया जी को ''निज जन परमोदार वात्सल्य सीमा'' कहकर रसिकजनों के हृदय को एक अद्भुत उत्साह भी प्रदान करते हैं ।

अस्तु, भाव तरङ्गों का एक समुच्चय यह ग्रन्थ वास्तव में सुधा निधि ही है । यह मुक्तक काव्य एक अगाध-अबाध सिन्धु है, एवं अपने आप में विलक्षण है । विलक्षण इसीलिए है कि रसिकजन इसका पार पाना ही नहीं चाहते, अपितु सदा सर्वदा इसी रस सिन्धु में डूबे ही रहना चाहते हैं। क्यूँकि जितनी बार इसमें डुबकी लगाते हैं, उतनी बार कोई नवीन भाव रत्न प्राप्त करते हैं । अद्यावधि रसिकजन इस रस सिन्धु में डुबकियाँ लगाते आए हैं, एवं अपने हृदय से उच्छलित भाव रत्नों को अन्य रसिकों को वितरित करते आए हैं ।

प्रातः स्मरणीय 'रसिक पद रेणु', श्रीहित कृपामूर्ति, परम भागवत श्रीहितदास जी महाराज द्वारा की गई यह सुन्दर सरस व्याख्या भी, महाराज श्री के इस रस सिन्धु में सतत् अवगाहन के फलस्वरूप प्राप्त एक भाव रत्न ही है । यह व्याख्या केवल प्रतिभा का चमत्कार मात्र नहीं अपितु श्रीहित महाप्रभु की कृपा ही है । क्योंकि चमत्कार केवल क्षणिक चकाचौंध उत्पन्न करते हैं, एवं कृपा सतत् मार्ग आलोकित करती है । इस व्याख्या का अवलोकन करने के पश्चात् प्रथम भाव मन में यही आया कि इस का

उद्देश्य सब को लाभान्वित करना ही है । बाबा श्री हितदास जी महाराज ने अपने परम उदार स्वभाव के वशीभूत होकर ही इस स्तोत्र की व्याख्या कर इसे अस्मदादि साधारण जनों के लिए सुबोध बनाया । महाराज श्री ने व्याख्या में न तो कहीं पाण्डित्य का प्रदर्शन किया है एवं न विद्वत्ता का विलास ही दिखाया है । श्रीहित महाप्रभु की वस्तु श्रीहित महाप्रभु को अर्पित करने का सरस प्रयास है यह व्याख्या । अतः रसिक समाज इससे लाभान्वित एवं मुदित होता आया है और होता रहेगा ।

मुझे, परम वन्दनीय श्रीहित कमलदास जी महाराज ने दो शब्द कहने के लिए कहा तो यह विशुद्ध रूप से मुझ पर उनके अनुग्रह के अतिरिक्त और कुछ नहीं । क्यूँकि जिस प्रकार श्रीहित कमलदास जी अपने पूज्य गुरुदेव के स्थान, साहित्य, सिद्धान्त एवं स्वरूप को संजोए हुए हैं, यह अपने आप में समर्पण का मूर्त रूप है और शायद यह भाव अनुभव गम्य ही है; वर्णन का विषय नहीं । वृन्दावनेश्वरी से मेरा यही विनय है कि वो बाबा को सेवा का सामर्थ्य प्रदान करती रहें, एवं हम बाबा के माध्यम से श्री जी का कृपा प्रसाद प्राप्त करते रहें ।

हित अम्बरीष

श्री राधावल्लभ भजत भजि भली-भली सब होय



निभृत निकुंज विलासी श्री हितलाड़िले
ठा० श्री राधावल्लभ लाल जू

❀ श्रीहित राधावल्लभो जयति ❀

❀ श्रीहित हरिवंशचन्द्रो जयति ❀

श्रीरस-सुधा-निधि

[भावानुवाद सहित]

मंगलाचरण (दिशा को नमस्कार) १ वसन्ततिलकावृत्तम्

संकेत—निखिल निगमागम अगोचर रस-रीति प्रकाशक, सकल रसिक-जन वन्दित चरण, हितावतार, वंशी-स्वरूप श्रीमदाचार्य व्यास-नन्दन श्रीहित हरिवंशचन्द्र महाप्रभु ग्रन्थारम्भ में स्वेष्ट-प्रभाव वर्णनात्मक एवं नमस्कारात्मक मङ्गलाचरण करते हैं।

यस्याः कदापि वसनाञ्चल खेलनोत्थ,
धन्यातिधन्य पवनेन कृतार्थमानी।
योगीन्द्रदुर्गमगतिर्मधुसूदनोऽपि,
तस्याः नमोस्तु वृषभानुभुवो दिशेऽपि ।।

भावार्थ—किसी समय जिनके नीलाञ्चल के हिलने से उठे हुए धन्यातिधन्य पवन को स्पर्श करके योगीन्द्रों के लिये अति दुर्गम गति मधुसूदन ने भी अपने आपको कृतकृत्य माना, उन श्रीवृषभानुनन्दिनी की दिशा को नमस्कार (स्वीकार) हो।

वाञ्छित पद प्राप्त किया तथा जो चरण-रेणु भाव समुत्साहपूर्वक सेवन करने वाले (भावुक भक्तों) के लिये रसदाता कामधेनु ही है; मैं उसी श्रीराधिका-चरण-रेणु का स्मरण करती हूँ ।

जयजयकार ५ वसन्ततिलकावृत्तम्

दिव्यप्रमोद रस सार निजाङ्गसङ्ग,
पीयूषवीचि निचयैरभिषेचयन्ती ।
कन्दर्प कोटि शर मूर्च्छित नन्दसूनु–
सञ्जीवनी जयति कापि निकुञ्जदेवी ।।

जो सदा अपने अङ्ग-सङ्ग रूप अलौकिक आनन्द-रस-सार अमृत की लहरी-समूहों का अभिसिञ्चन कर - करके कोटि-कोटि कन्दर्प-शरों से मूर्च्छित नन्दनन्दन श्रीलालजी को जीवन-दान करती रहती हैं, उन नन्द-सूनु-सञ्जीवनी किन्हीं (अनिर्वचनीय) निकुञ्जदेवी की जय हो, जय हो ।

दर्शनाकाँक्षा ६ वसन्ततिलकावृत्तम्

तन्नः प्रतिक्षण चमत्कृत चारुलीला–
लावण्य मोहन महामधुराङ्गभङ्गि ।
राधाननं हि मधुराङ्ग कलानिधान–
माविर्भविष्यति कदा रससिन्धु सारम् ।।

जिस आनन-कमल से प्रतिक्षण महामोहन माधुर्य्य के विविध अङ्गों की भङ्गिमा युक्त सुन्दर-सुन्दर लीलाओं का लावण्य चमत्कृत होता रहता है और जो माधुर्य्य के अङ्गों की चातुरी का उत्पत्ति स्थान है, वही समस्त रस-सार-सिन्धु श्रीराधानन हमारे सम्मुख कब आविर्भूत होगा ?

मार्जनी होने की अभिलाषा ७ वसन्ततिलकावृत्तम्

यत्किङ्करीषु बहुशः खलु काकुवाणी
नित्यं परस्य पुरुषस्य शिखण्डमौलेः ।
तस्याः कदा रसनिधेर्वृषभानुजाया–
स्तत्केलिकुञ्ज भवनाङ्गण मार्जनीस्याम् ।।

निश्चय ही; जिनकी दासियों से परम-पुरुष शिखण्ड-मौलि श्रीश्याम-सुन्दर नित्य-निरन्तर कातर-वाणी द्वारा भूरि-भूरि प्रार्थना करते रहते हैं, क्या मैं कभी उन रसनिधि श्रीवृषभानुजा के केलि-कुञ्ज-भवन के प्राङ्गण की सोहनी देने वाली हो सकूँगी ? (जिसमें प्रवेश करने के लिये श्रीलालजी को भी सखियों से प्रार्थना करनी पड़ती है) ।

मनोबोध **८** **वसन्ततिलकावृत्तम्**

वृन्दानि सर्वमहतामपहायादूराद्–
वृन्दाटवीमनुसर प्रणयेन चेतः ।
सत्तारणीकृतसुभावसुधारसौघं
राधाभिधानमिह दिव्यनिधानमस्ति ॥

हे मेरे मन ! तू समस्त महच्चेष्टाओं (महत् वृन्दों) को दूर से ही छोड़कर प्रीति-पूर्वक श्रीवृन्दाटवी का अनुसरण कर । जहाँ 'श्रीराधा' नामक एक दिव्य निधि विराजमान् है । जो सज्जनों को भव से उद्धार करने वाले भाव रूप सुधा-रस का प्रवाह है ।

निकुंजकेलि आस्वादन अभिलाषा **६** **वसन्ततिलकावृत्तम्**

केनापि नागरवरेण पदे निपत्य
संप्रार्थितैकपरिरम्भरसोत्सवायाः ।
सभ्रूविभङ्गमतिरङ्गनिधेः कदा ते
श्रीराधिके नहिनहीतिगिरः शृणोमि ॥

हे श्रीराधिके ! कोई चतुर-शिरोमणि किशोर आपके श्रीचरणों में बारम्बार गिरकर आपसे परिरम्भण सुखोत्सव की याचना कर रहे हों और आप अपनी भ्रूलताओं को विभङ्गित कर-करके परम रसमय वचन 'नहीं नहीं' ऐसा कह रही हों । हे अति कौतुक-निधि ! मैं आपके इन शब्दों को कब सुनूँगी ?

कृपा याचना १० वसन्ततिलकावृत्तम्

यत्पादपद्मनखचन्द्रमणिच्छटाया
विस्फूर्जितं किमपि गोपवधूष्वदर्शि ।
पूर्णानुरागरससागरसारमूर्त्तिः
सा राधिका मयि कदापि कृपां करोतु ॥

जिनके पाद-पद्म-नख रूप चन्द्रमणि की किसी अनिर्वचनीय छटा का प्रकाश गोप-वधुओं में देखा जाता है, वही परिपूर्ण अनुराग-रस-समुद्र की सार-मूर्त्ति श्रीराधिका कभी मुझ पर भी कृपा करेंगी ?

कृपा-दृष्टि की लालसा ११ वसन्ततिलकावृत्तम्

उज्जृम्भमाणरसवारिनिधेस्तरङ्गै-
रंगैरिव प्रणयलोलविलोचनायाः ।
तस्याः कदा नु भविता मयि पुण्यदृष्टि-
र्वृन्दाटवीनवनिकुञ्जगृहाधिदेव्याः ॥

जिनके नेत्र प्रणय-रस से चञ्चल हो रहे हैं और जिनके अङ्ग उत्फुल्लमान् रस-सागर की तरङ्गों के समान हैं, उन श्रीवृन्दाटवी नव-निकुञ्ज भवन की अधिष्ठात्री देवी की पवित्र दृष्टि मुझ पर कब होगी ?

अनन्य चरणाश्रय १२ वसन्ततिलकावृत्तम्

वृन्दावनेश्वरि तवैव पदारविन्दं
प्रेमामृतैकमकरन्दरसौघपूर्णम् ।
हृद्यर्पितं मधुपतेः स्मरतापमुग्रं
निर्वापयत्परमशीतलमाश्रयामि ॥

हे वृन्दावनेश्वरि ! आपके चरण-कमल एकमात्र प्रेमामृत-मकरन्द रस-राशि से परिपूर्ण हैं, जिन्हें हृदय में धारण करते ही मधुपति श्रीलालजी का तीक्ष्ण स्मरताप (काम-ताप) निर्वारित हो जाता है । मैं आपके उन्हीं परम शीतल चरणारविन्दों का आश्रय ग्रहण करती हूँ, मेरे लिये उनके सिवाय और कोई गति नहीं है ।

मनोबोध १३ वसन्ततिलकावृत्तम्

राधाकरावचितपल्लववल्लरीके,
राधापदाङ्कविलसन्मधुरस्थलीके ।
राधायशोमुखरमत्तखगावलीके,
राधा-विहारविपिने रमतां मनो मे ॥

हे मेरे मन ! तू श्रीराधा-करों से स्पर्श की हुई पल्लव-वल्लरी से मण्डित, श्रीराधा पदाङ्कों से शोभित, मनोहर स्थल-युक्त एवं श्रीराधा यशोगान से मुखरित मत्त खगावली-सेवित श्रीराधा कुञ्ज-केलि कानन श्रीवृन्दावन में रमणकर !

हास-परिहास १४ वसन्ततिलकावृत्तम्

कृष्णामृतं चलु विगाढुमितीरिताहं
तावत्सहस्व रजनी सखि यावदेति ।
इत्थं विहस्य वृषभानुसुतेह लप्स्ये
मानं कदा रसदकेलि कदम्ब जातम् ॥

जब वे मुझसे कहेंगी—"अरी सखि ! श्रीकृष्णामृत[1] अवगाहन करने के लिए चल" । तब मैं हँसकर कहूँगी—"हे सखि ! तब तक धैर्य्य रखो जब तक रात्रि नहीं आ जाती ।" (क्योंकि कृष्णामृत-अवगाहन तो रात्रि में ही अधिक उपयुक्त है ?) उस समय मेरे हास-मय वचनों से रसदायक केलि-समूह का एक अनुपम आनन्द उत्पन्न होगा । मैं कब श्रीवृषभानु-नन्दिनी से इस रसमय सम्मान की अधिकारिणी होऊँगी ?

१—श्रीकृष्णामृत शब्द यहाँ श्लिष्ट है । 'कृष्णा' यमुना का एक नाम है । श्रीप्रियाजी ने सखी से यमुना-स्नान की ही बात कही थी; किन्तु सखी ने परिहास से आनन्द-वृद्धि के लिए कृष्णामृत पद का अर्थ किया 'श्रीकृष्ण का एकान्त मिलन-रस' । जिसकी प्राप्ति रात्रि को ही सम्भव बताई, यही हास विशेष है ।

दर्शनाभिलाषा १५ वसन्ततिलकावृत्तम्

पादांगुली निहित दृष्टिमपत्रपिष्णुं
दूरादुदीक्ष्यरसिकेन्द्रमुखेन्दुबिम्बम् ।
वीक्षे चलत्पदगतिं चरिताभिरामां-
झङ्कारनूपुरवतीं बत कर्हि राधाम् ।।

अपने प्रियतम रसिक-पुरन्दर श्रीलालजी के मुखचन्द्र मण्डल को दूर से ही देखकर जिन्होंने लज्जा से भरकर अपनी दृष्टि को अपने ही चरणों की अंगुलियों में निहित कर दिया है और फिर जो सलज्ज गति से (निकुञ्ज-भवन की ओर) चल पड़ी हैं, जिससे चरण-नूपुर झंकृत हो उठे हैं। हाय ! वे अभिराम-चरिता श्रीराधा क्या कभी मुझे दर्शन देंगी ?

पाद-सम्वाहनादि अभिलाषा १६ वसन्ततिलकावृत्तम्

उज्जागरं रसिकनागर सङ्ग रङ्गैः
कुंजोदरे कृतवती नु मुदा रजन्याम् ।
सुस्नापिता हि मधुनैव सुभोजिता त्वं
राधे कदा स्वपिषि मत्कर लालितांघ्रिः ।।

हे श्रीराधे ! तुमने अपने प्रियतम रसिक नागर श्रीलालजी के साथ कुञ्ज-भवन में आनन्द-विहार करते हुए मोद में ही सारी रात्रि जागकर व्यतीत कर दी हो तब प्रातःकाल मैं तुम्हें अच्छी तरह से स्नान कराके मधुर-मधुर भोजन कराऊं और सुखद शय्या पर पौढ़ाकर अपने कोमल करों से तुम्हारे ललित चरणों का संवाहन करूं। मेरा ऐसा सौभाग्य कब होगा ?

सप्त सिन्धु रूपा श्रीराधा १७ वसन्ततिलकावृत्तम्

वैदग्ध्यसिन्धुरनुराग रसैकसिन्धु–
र्वात्सल्यसिन्धुरतिसान्द्रकृपैकसिन्धुः ।
लावण्यसिन्धुरमृतच्छविरूप सिन्धुः
श्रीराधिका स्फुरतु मे हृदि केलि सिन्धुः ।।

जो विदग्धता की सिन्धु, अनुराग रस की एकमात्र सिन्धु, वात्सल्य-भाव की सिन्धु अत्यन्त घनीभूत कृपा की एकमात्र सिन्धु, लावण्य की सिन्धु और छबि रूप अमृत की अपार सिन्धु हैं। वे केलि-सिन्धु श्रीराधा मेरे हृदय में स्फुरित हों।

प्रेमालिङ्गन अभिलाषा — १८ — वसन्ततिलकावृत्तम्

दृष्ट्वैव चम्पकलतेव चमत्कृताङ्गी,
वेणुध्वनिं क्व च निशम्य च विह्वलाङ्गी।
सा श्यामसुन्दरगुणैरनुगीयमानैः
प्रीता परिष्वजतु मां वृषभानुपुत्री॥

जो अपने प्रियतम श्रीलालजी को देखते ही चम्पकलता के समान अङ्ग-अङ्ग से चमत्कृत हो उठती हैं, और कभी मन्द-मन्द वेणु-ध्वनि को सुनकर जिनके समस्त अङ्ग विह्वल हो उठते हैं। अहो ! वे श्रीवृषभानु-नन्दिनी मेरे द्वारा गाये हुए अपने प्रियतम श्यामसुन्दर के गुणों को श्रवण-कर क्या कभी मुझे प्रीतिपूर्वक आलिङ्गन करेंगी ?

विलास-रस छटा अभिसिञ्चन — १९ — वसन्ततिलकावृत्तम्

श्रीराधिके सुरतरङ्गि नितम्ब भागे
काञ्चीकलाप कल हंस कलानुलापैः।
मञ्जीरसिञ्जित मधुव्रत गुञ्जिताङ्घ्रिः
पङ्करुहैः शिशिरयस्व रसच्छटाभिः॥

हे श्रीराधिके ! हे सुरत-केलि-रञ्जित नितम्ब-भागे ! अहा ! आपका यह काञ्ची-कलाप क्या है मानो कल हंसों का कल-कल अनुलाप है, और चरण-कमलों के नूपुरों की मन्द-मन्द झनकार ही मानों मतवाले भ्रमरों का गुञ्जन है। स्वामिनि ! आप अपने इसी मधुर-रस की छटा से मुझे शीतल कर दीजिए।

सान्निध्य-प्राप्ति-याचना २० वसन्ततिलकावृत्तम्

श्रीराधिके सुरतरङ्गिणि दिव्यकेलि
कल्लोलमालिनिलसद्वदनारविन्दे ।
श्यामामृताम्बुनिधि सङ्गमतीव्रवेगि–
न्यावर्त्तनाभि रुचिरे मम सन्निधेहि ।।

हे दिव्यकेलि-तरङ्गमाले ! हे शोभमान् वदनारविन्दे ! हे श्रीश्याम-सुन्दर-सुधा-सागर-सङ्गमार्थ तीव्र वेगवती ! हे रुचिर नाभिरूप गम्भीर भँवर से शोभायमान् सुरत-सलिते ! (मन्दाकिनि रूपे !) हे श्रीराधिके ! आप मुझे अपना सामीप्य प्रदान कीजिये ।

चरण-धारण-अभिलाषा २१ वसन्ततिलकावृत्तम्

सत्प्रेम सिन्धु मकरन्द रसौघधारा
सारानजस्रमभितः स्रवदाश्रितेषु ।
श्रीराधिके तव कदा चरणारविन्दं
गोविन्द जीवनधनं शिरसा वहामि ।।

जो अपने आश्रित-जनों पर सत्प्रेम (महाप्रेम) समुद्र के मधुर मकरन्द-रस की प्रबल धारा अनवरत रूप से चारों ओर से बरसाते रहते हैं तथा जो गोविन्द के जीवन-धन हैं, हे श्रीराधिके ! आपके उन चरण-कमलों को मैं कब अपने सिर पर धारण करूँगी ?

सङ्केत-कुञ्ज-परिचर्य्या २२ वसन्ततिलकावृत्तम्

सङ्केत कुञ्जमनुकुञ्जर मन्दगामि–
न्यादाय दिव्यमृदुचन्दनगन्धमाल्यम् ।
त्वां कामकेलि रभसेन कदा चलन्तीं
राधेनुयामि पदवीमुपदर्शयन्ती ।।

हे राधे ! आप काम-केलि की उत्कण्ठा से भरकर सङ्केत-कुञ्ज में पधार रही हों और मैं शीतलचन्दन, गन्ध, परिमल, पुष्पमाला आदि दिव्य और मृदु सामग्री लेकर आपको सङ्केत कुञ्ज का लक्ष्य कराती हुई मन्द-मन्द कुञ्जर-गति से आपका अनुगमन करूँ, ऐसी कृपा कब करोगी ?

सुखद मनोरथ　　२३　　वसन्ततिलकावृत्तम्

गत्वा कलिन्दतनया विजनावतार–
मुद्वर्त्तयन्त्यमृतमङ्गमनङ्गजीवम् ।
श्रीराधिके तव कदा नवनागरेन्द्रं
पश्यामि मग्न नयनं स्थितमुच्चनीपे ॥

हे श्रीराधिके ! आप स्नान करने के लिए कलिन्द-तनया यमुना के किसी निर्जन घाट पर पधारें और मैं आपके अनङ्ग-जीवनदाता श्रीअङ्गों का उद्वर्त्तन (उबटन) करूँ, उस समय (तट के) उच्च कदम्ब पर स्थित नव-नागर शिरोमणि श्रीलालजी को आपकी ओर निरखते हुए मैं कब देखूँगी ?

मुख-कमल-दर्शन अभिलाषा　　२४　　वसन्ततिलकावृत्तम्

सत्प्रेम राशि सरसो विकसत्सरोजं
स्वानन्द सीधु रससिन्धु विवर्द्धनेन्दुम् ।
तच्छ्रीमुखं कुटिल कुन्तलभृङ्गजुष्टं
श्रीराधिके तव कदा नु विलोकयिष्ये ॥

हे श्रीराधिके ! आपका यह श्रीमुख पवित्र प्रेम-राशि-सरोवर का विकसित सरोज है अथवा आपके अपने जनों को आनन्द देने वाला अमृत है किंवा रससिंधु का विवर्द्धन करने वाला पूर्णचन्द्र ? अहा ! जिस मुख-कमल के आस-पास काली-काली घुँघराली अलकावली मतवाले भृङ्ग-समूहों के समान लटक रही है, मैं कब आपके इस मनोहर मुख-कमल का दर्शन करूँगी ?

अखिल सार वस्तु लक्ष्य २५ वसन्ततिलकावृत्तम्

लावण्य सार रस सार सुखैक सारे
कारुण्य सार मधुरच्छविरूप सारे ।
वैदग्ध्य सार रति केलि विलास सारे
राधाभिधे मम मनोखिल सार सारे ।।

एक सर्व सारातिसार स्वरूप है, जो लावण्य का सार, रस का सार और समस्त सुखों का एक मात्र सार है; वही दयालुता के सार से युक्त मधुर छवि के रूप का भी सार है । जो चातुर्य्य का सार एवं रति-केलि-विलास का भी सार है वही राधा नामक तत्व सम्पूर्ण सारों का सार है, इसी में मेरा मन सदा रमा करे ।

मणिरूप सारातिसार स्वरूप २६ वसन्ततिलकावृत्तम्

चिन्तामणिः प्रणमतां व्रजनागरीणां
चूडामणिः कुलमणिर्वृषभानुनाम्नः ।
सा श्याम काम वर शान्ति मणिर्निकुञ्ज
भूषामणिर्हृदय-सम्पुट सन्मणिर्नः ।।

जो आश्रित जनों के लिए समस्त फल-दाता चिन्तामणि हैं, जो व्रज-नव - तरुणियों की चूड़ामणि और वृषभानु की कुलमणि हैं जो श्रीश्याम-सुन्दर के काम को शान्त करने वाली श्रेष्ठ मणि हैं । वही निकुञ्ज-भवन की भूषण-रूपा मणि तथा मेरे हृदय-सम्पुट की भी दिव्य मणि (श्रीराधा) हैं ।

मनोबोध २७ वसन्ततिलकावृत्तम्

मञ्जुस्वभावमधिकल्पलतानिकुञ्ज
व्यञ्जन्तमद्भुतकृपारसपुञ्जमेव ।
प्रेमामृताम्बुधिमगाधमवाधमेतं
राधाभिधं द्रुतमुपाश्रय साधु चेतः ।।

जिनका स्वभाव बड़ा ही कोमल है और जो सङ्कल्पाधिक काम-पूरक कल्पलता के निभृत-निकुञ्ज में विराजती हुई अद्‌भुत कृपा-रस-पुञ्ज का ही प्रकाशन करती रहती हैं। हे मेरे साधु मन ! तू उसी राधा नामक प्रेमामृत के अगाध और अबाध (अमर्यादित) अम्बुधि का शीघ्र आश्रय कर।

धन्यवादार्ह रसिकजन २८ वसन्ततिलकावृत्तम्

श्रीराधिकां निज विटेन सहालपन्तीं
शोणाधर प्रसमरच्छवि-मञ्जरीकाम् ।
सिन्दूर सम्वलित मौक्तिक पंक्ति शोभां
यो भावयेद्दशन कुन्दवतीं स धन्यः ॥

श्रीप्रियाजी अपने प्रियतम श्रीलालजी के साथ कुछ मधुर-मधुर बातें कर रही हैं, जिससे उनके लाल-लाल ओठों से सौन्दर्य्य-राशि निकल-निकलकर चारों ओर फैल रही है । अहा ! जिनके विशाल भाल पर सिन्दूर-रञ्जित मोतियों की पंक्ति शोभायमान् है और दन्त पंक्ति कुन्द-कलियों को भी लज्जित कर रही है। वही धन्य हैं जो ऐसी श्रीप्रियाजी के भावना-परायण हैं।

हृदयाभरण श्रीराधा २९ वसन्ततिलकावृत्तम्

पीतारुणच्छविमनन्ततडिल्लताभां
प्रौढानुराग मदविह्वल चारुमूर्त्तिम् ।
प्रेमास्पदां व्रजमहीपति तन्महिष्यो–
र्गोविन्दवन्मनसि तां निदधामिराधाम् ॥

जिनकी छवि पीत और अरुणिमा-मिश्रित स्वर्ण के समान है, आभा अनन्त विद्युन्माला की दीप्ति के समान है । जिनकी सुन्दर मूर्त्ति प्रौढ़ अनुराग से विह्वल है और जो व्रजराज एवं व्रजरानी के लिए गोविन्द के समान प्रेमपात्र हैं; उन श्रीराधा को मैं अपने मन में धारण करती हूँ।

दास्य प्राप्त करने की प्रार्थना ३० वसन्ततिलकावृत्तम्

निर्माय चारुमुकुटं नव चन्द्रकेण
गुञ्जाभिरारचित हारमुपाहरन्ती ।
वृन्दाटवी नवनिकुञ्ज गृहाधिदेव्याः
श्रीराधिके तव कदा भवितास्मि दासी ।।

स्वामिनि ! मैं नवीन-नवीन मयूर-चन्द्रिकाओं से निर्मित सुन्दर मुकुट एवं गुञ्जा-रचित हार आपके निकट पहुँचाऊँ। वृन्दावन नव-निकुञ्ज-गृह की अधिदेवी हे श्रीराधे ! मैं आपकी ऐसी दासी कब होऊँगी ?

कृपा-कटाक्ष-प्राप्ति की प्रार्थना ३१ वसन्ततिलकावृत्तम

सङ्केत कुञ्जमनुपल्लवमास्तरीतुं
तत्तत्प्रसादमभित. खलु संवरीतुम् ।
त्वां श्यामचन्द्रमभिसारयितुं धृताशे
श्रीराधिके मयि विधेहि कृपा कटाक्षम् ।।

स्वामिनि ! मैंने केवल यही आशा धारण कर रखी है कि उन-उन संकेत-कुञ्जों में नवीन-नवीन पल्लवों की सुन्दर शय्या बिछाऊँ और वहाँ पर श्यामचन्द्र (श्रीलालजी) से मिलन कराने के लिए तुम्हें छिपाकर ले जाऊं। तब आप मेरी इस सेवा से प्रसन्न हो उठें। हे श्रीराधिके ! आप तो मुझ पर अपने इतने ही कृपा-कटाक्ष का विधान कीजिए।

श्रीराधिका-चरण-रेणु स्मरण ३२ वसन्ततिलकावृत्तम्

दूरादपास्य स्वजनान्सुखमर्थ कोटिं
सर्वेषु साधनवरेषु चिरं निराशः ।
वर्षन्तमेव सहजाद्भुत सौख्य धारां
श्रीराधिका चरणरेणुमहं स्मरामि ।।

मैंने अपने स्वजन-सम्बन्धी वर्ग और कोटि-कोटि सम्पत्तियों के सुख को दूर से ही त्याग दिया है तथा (परमार्थ-सम्बन्धी) समस्त श्रेष्ठ साधनों में भी मेरी चिर निराशा हो चुकी है। अब तो मैं स्वभावतया अद्भुत सुख की धारा का ही वर्षण करने वाले श्रीराधिका-चरण-रेणु का स्मरण करती हूँ।

रसोल्लास रूप कनक-कुच स्मरण ३३ **वसन्ततिलकावृत्तम्**

वृन्दाटवी प्रकट मन्मथ कोटि मूर्त्ते
कस्यापि गोकुलकिशोर निशाकरस्य।
सर्वस्व सम्पुटमिव स्तनशातकुम्भ
कुम्भद्वयं स्मर मनो वृषभानुपुत्र्याः॥

हे मेरे मन! तू श्रीवृषभानुनन्दिनी के स्वर्ण-कलशों के समान युगल स्तनों का स्मरण कर। जो वृन्दावन में प्रकट रूप से विराजमान् कोटि कन्दर्प-मूर्त्ति किन्हीं गोकुल-किशोरचन्द्र के सर्वस्व-सम्पुट के समान हैं।

महामधुर-शृङ्गारोत्तर रस स्मरण ३४ **वसन्ततिलकावृत्तम्**

सान्द्रानुराग रससार सरः सरोजं
किं वा द्विधा मुकुलितं मुखचन्द्र भासा।
तन्नूतन स्तन युगं वृषभानुजायाः
स्वानन्द सीधु मकरन्द घनं स्मरामि॥

घनीभूत प्रेम-रस-सार-सरोवर का एक सरोज मानो मुखचन्द्र का प्रकाश पाकर दो रूपों में मुकुलित हो गया है और जो स्वानन्द-अमृत के मकरन्द का सघन स्वरूप है, मैं श्रीवृषभानुनन्दिनी के उस नवीन स्तन-युग्म का स्मरण करती हूँ।

पुनः वही ३५ वसन्ततिलकावृत्तम्

क्रीडासरः कनक पङ्कज कुड्मलाय
स्वानन्दपूर्ण रसकल्पतरोः फलाय ।
तस्मै नमो भुवनमोहन मोहनाय,
श्रीराधिके तव नवस्तन मण्डलाय ।।

श्रीराधिके ! केलि-सरोवर की कनक-पङ्कज-कली के समान अथवा आपके अपने ही आनन्द से परिपूर्ण रसकल्पतरु के फल के समान त्रिभुवन-मोहन श्रीमोहनलाल का भी मोहन करने वाले आपके नवीन स्तन-मण्डल को नमस्कार है ।

कृपावलोकन याचना ३६ वसन्ततिलकावृत्तम्

पत्रावलीं रचयितुं कुचयोः कपोले
बद्धुं विचित्र कबरीं नव मल्लिकाभिः ।
अङ्गं च भूषयितुमाभरणैधृताशे
श्रीराधिके मयि विधेहि कृपावलोकम् ।।

हे श्रीराधिके ! मैंने तो केवल यही आशा धारण कर रखी है और आप भी मुझ पर अपनी कृपा-दृष्टि का ऐसा ही विधान करें कि मैं आपके युगल-कुच-मण्डल और कपोलों पर (चित्र-विचित्र) पत्रावली-रचना करूं । मल्लिका के नवीन-नवीन पुष्पों को गूंथकर विचित्र रीति से आपका कबरी-बन्धन करूं और आपके सुन्दर सुकोमल अङ्गों में तदनुरूप आभरण आभूषित करूं ।

प्रेम-वैचित्य ३७ वसन्ततिलकावृत्तम्

श्यामेति सुन्दरवरेति मनोहरेति
कन्दर्प-कोटि-ललितेति सुनागरेति ।
सोत्कण्ठमह्नि गृणती मुहुराकुलाक्षी
सा राधिका मयि कदा नु भवेत्प्रसन्ना ।।

जो दिवस-काल में "हे श्याम ! हा सुन्दर वर ! हा मनोहर ! हे कन्दर्प-कोटि-ललित ! अहो चतुर शिरोमणि !" ऐसे उत्कण्ठा-युक्त शब्दों से बारम्बार गान करती हैं । वे आकुल-नयनी श्रीराधिका मुझ पर कब प्रसन्न होंगी ?

परिचर्य्या-आकाङ्क्षा ३८ वसन्ततिलकावृत्तम्

वेणुः करान्निपतितः स्खलितं शिखण्डं
भ्रष्टं च पीतवसनं व्रजराज सूनोः ।
यस्याः कटाक्ष शरपात विमूर्च्छितस्य
तां राधिका परिचरामि कदा रसेन ।।

जिनके नयन-वाणों की चोट से श्रीव्रजराजकुमार की मुरली हाथ से छूट गिरती है । सिर का मोर-मुकुट खिसक चलता है और पीताम्बर भी स्थान-च्युत हो जाता है; यहाँ तक कि वे मूर्च्छित होकर गिर पड़ते हैं । अहा ! क्या मैं कभी ऐसी श्रीराधिका की प्रेम-पूर्वक परिचर्य्या करूँगी !

अभिलाषा ३९ वसन्ततिलकावृत्तम्

तस्या अपार रस-सार विलास-मूर्त्ते–
रानन्द-कन्द परमाद्भुत सौम्य लक्ष्म्याः ।
ब्रह्मादि दुर्गमगतेर्वृषभानुजायाः
कैङ्कर्य्यमेव ममजन्मनि-जन्मनि स्यात् ।।

जो अपार रस - सार की विलास-मूर्त्ति, आनन्द की मूल एवं परमाद्भुत सुख की सम्पत्ति हैं एवं जिनकी गति ब्रह्मादि को भी दुर्गम है । उन श्रीवृषभानुनन्दिनीजू का कैङ्कर्य्य ही मुझे जन्म-जन्मान्तरों में प्राप्त होता रहे ।

उपरोक्तानुसार ही ४० वसन्ततिलकावृत्तम्

पूर्णानुराग रसमूर्त्ति तडिल्लताभं
ज्योतिः परं भगवतो रतिमद्रहस्यम् ।
यत्प्रादुरस्ति कृपया वृषभानु गेहे
स्यात्किङ्करी भवितुमेव ममाभिलाषः ।।

एक रहस्यमयी परम ज्योति है । जो परात्पर परमपुरुष भगवान् श्रीकृष्ण को भी अपने आप में रमा लेती है । जिसकी कान्ति विद्युल्लता के समान देदीप्यमान् है और जो पूर्णतम अनुराग-रस की मूर्ति है । अहो ! कृपापूर्वक ही वह श्रीवृषभानु-भवन में प्रादुर्भूत हुई है । मेरी तो यही अभिलाषा है कि उसी की दासी हो रहूँ ।

चन्द्र-वदन स्मरण ४१ वसन्ततिलकावृत्तम्

प्रेमोल्लसद्रस विलास विकास कन्दं
गोविन्द लोचन वितृप्त चकोर पेयम् ।
सिञ्चन्तमद्भुत रसामृत चन्द्रिकौघैः
श्रीराधिकावदन-चन्द्रमहं स्मरामि ।।

जो प्रेम से उल्लसित रस-विलास का विकास बीज है एवं गोविन्द के अतृप्त लोचन-चकोरों के लिये पेय स्वरूप है, उसी अद्भुत रसामृत-चन्द्रिका-धारा-सिञ्चन-कारी श्रीराधिका-मुख-चन्द्र का मैं स्मरण करती हूँ ।

अभिलाषा ४२ वसन्ततिलकावृत्तम्

सङ्केत कुञ्ज निलये मृदुपल्लवेन
क्लृप्ते कदापि नव सङ्ग भयत्रपाढ्याम् ।
अत्याग्रहेण करवारिरुहे गृहीत्वा
नेष्ये विटेन्द्र-शयने वृषभानुपुत्रीम् ।।

मैं, रहस्य निकुञ्ज गृह में कोमल-पल्लव-रचित रसिकेन्द्र-शय्या पर नवीन सङ्गम के भय एवं लज्जा से भरी हुई श्रीवृषभानु-किशोरी को कर-कमल पकड़कर अत्यन्त आग्रह के साथ शयन-गृह में कभी ले जाऊँगी ?

कैङ्कर्य्य अभिलाषा ४३ वसन्ततिलकावृत्तम्

सद्गन्ध माल्य नवचन्द्र लवङ्ग सङ्ग
ताम्बूल सम्पुटमधीश्वरि मां वहन्तीम् ।
श्यामं तमुन्मद-रसादभि-संसरन्ती
श्रीराधिके करुणयानुचरीं विधेहि ॥

हे अधीश्वरि ! जब आप रस से उन्मद होकर श्रीलालजी के समीप पधारने लगें, उस समय मैं सुन्दर सुगन्धित मालाएँ और नव-कर्पूर लवङ्ग-युक्त ताम्बूल-सम्पुट (डबा) लेकर चलूँ । हे श्रीराधिके ! कृपा करके आप मुझे अपनी ऐसी ही अनुचरी बनाइये ।

कैशोर-सौन्दर्य ४४ वसन्ततिलकावृत्तम्

श्रीराधिके तव नवोद्गम चारुवृत्त
वक्षोजमेव मुकुलद्वय लोभनीयम् ।
श्रोणीं दधद्रस गुणैरुपचीयमानं
कैशोरकं जयति मोहन-चित्त-चोरम् ॥

हे श्रीराधिके ! चारु, वर्त्तुल, मुकुलित स्तन-द्वय द्वारा लोभनीय, नितम्ब विशिष्ट युक्त रस-स्वरूप श्रीकृष्ण के नित्य सेवनादि गुणों द्वारा वर्द्धमान् एवं मोहन के भी चित्त का हरण करने वाला आपका कैशोर जययुक्त हो रहा है ।

अभिलाषा ४५ वसन्ततिलकावृत्तम्

संलापमुच्छलदनङ्ग तरङ्गमाला
संक्षोभितेन वपुषा व्रजनागरेण ।
प्रत्यक्षरं क्षरदपार रसामृताब्धि
श्रीराधिके तव कदा नु शृणोम्यदूरात् ।।

अनेकों अनङ्गों की तरङ्गमाला उच्छलित हो-होकर जिनके श्रीवपु को आन्दोलित कर रही है, ऐसे व्रजनागर श्रीलालजी के साथ आप संलाप करती हों । जिस संलाप के अक्षर-अक्षर में अपार रसामृत-सिन्धु झरता रहता है । हे स्वामिनि ! मैं समीप ही स्थित होकर आपके उस महामधुर संलाप को कब सुनूंगी ?

प्रेम-वैचित्य दशा ४६ वसन्ततिलकावृत्तम्

अङ्क स्थितेपि दयिते किमपि प्रलापं
हा मोहनेति मधुरं विदधत्यकस्मात् ।
श्यामानुराग मदविह्वल मोहनाङ्गी
श्यामामणिर्जयति कापि निकुञ्ज सीम्नि ।।

यद्यपि अपने प्रियतम की गोद में स्थित हैं, फिर भी अकस्मात् 'हा मोहन !' ऐसा मधुर प्रलाप कर उठती हैं; ऐसी श्याम-सुन्दर के अनुराग-मद से विह्वल मोहनाङ्गी कोई श्यामामणि निकुञ्ज-प्रान्त में जययुक्त विराजमान् हैं ।

अभिलाषा ४७ वसन्ततिलकावृत्तम्

कुञ्जान्तरे किमपि जात-रसोत्सवायाः
श्रुत्वा तदालपित सिञ्जित मिश्रितानि ।
श्रीराधिके तव रहः परिचारिकाहं
द्वारस्थिता रस-हृदे पतिता कदा स्याम् ।।

हे राधिके ! किसी अभ्यन्तर कुञ्ज-भवन में आप अपने प्रियतम के साथ किसी अनिर्वचनीय रसोत्सव में संलग्न हों, जिससे भूषण-ध्वनि मिश्रित आपके मधुर आलाप का स्वर सुनाई दे रहा हो और मैं आपकी एकान्त परिचारिका, कुञ्जद्वार में स्थित होकर उसे सुनूँ। और उसे सुनते ही प्रेम-विह्वल होकर रस के सरोवर में डूब जाऊँ । हे स्वामिनि ! ऐसा कब होगा ?

प्रेम विरह स्वरूप वर्णन ४८ वसन्ततिलकावृत्तम्

वीणां करे मधुमतीं मधुर-स्वरां ता–
माधाय नागर-शिरोमणि भाव-लीलाम् ।
गायन्त्यहो दिनमपारमिवाश्रु-वर्ष–
र्दुःखान्नयन्त्यहह सा हृदि मेऽस्तु राधा ।।

अहो ! जो स्वर-लहरी भरी अपनी मधुमती नाम्नी वीणा को उठाकर कर-कमलों में धारण करके अपने प्रियतम नागर-शिरोमणि श्रीलालजी की भाव-लीलाओं को गाती रहती हैं और बड़ी कठिनता से अपार सा दिन अश्रुओं की वर्षा द्वारा व्यतीत करती हैं । अहह ! ऐसी प्रेम-विह्वला श्रीराधा मेरे हृदय में निवास करें ।

मिलन-रस ४९ वसन्ततिलकावृत्तम्

अन्योन्यहास परिहास विलास केली
वैचित्र्य जृम्भित महारस-वैभवेन ।
वृन्दावने विलसतापहृतं विदग्ध–
द्वन्द्वेन केनचिदहो हृदयं मदीयम् ।।

अहो ! पारस्परिक हास-परिहास युक्त विविध-विलास-केलि की विचित्रता से उच्छलित महा रस-विभव के द्वारा श्रीवृन्दावन में विलास करने वाले किन्हीं विदग्ध युगल ने मेरे हृदय का अपहरण कर लिया है ।

प्रिया-स्वरूप ५० शिखरिणी

महाप्रेमोन्मीलन्नव रस सुधा सिन्धु लहरी
परीवाहैर्विश्वं स्नपयदिव नेत्रान्त नटनैः ।
तडिन्माला गौरं किमपि नव कैशोर मधुरं
पुरन्ध्रीणां चूडाभरण नवरत्नं विजयते ॥

जिनके चपल नेत्रों का नर्त्तन ही महानूतम प्रेम के विकास का नूतन-रस से परिपूर्ण सुधासिन्धु है । जिसकी लहरियों के प्रवाह से मानों विश्व को स्नान करा रही हैं । जो विद्युत-पंक्ति के समान गौर और समस्त व्रज-नव तरुणियों की नव-रत्न हैं-- शिरोमणि-भूषण हैं, वे कोई नव मधुर किशोरी सर्वोपरिता को प्राप्त हैं ।

अलक्ष्य किशोरी वर्णन ५१ शिखरिणी

अमन्द प्रेमाङ्कुश्लथ सकल निर्बन्धहृदयं
दयापारं दिव्यच्छवि मधुर लावण्य ललितम् ।
अलक्ष्यं राधाख्यं निखिलनिगमैरप्यतितरां
रसाम्भोधेः सारं किमपि सुकुमारं विजयते ॥

तीव्र प्रेम के कारण जिनके हृदय के समस्त बन्धन (आग्रह) शिथिल हो चुके हैं, जो दया की सीमा हैं एवं जिनकी दिव्य-छवि लावण्य-माधुर्य्य से अति-ललित हो रही है, वे निखिल-निगमों को भी अत्यन्त अलक्षित, रस-समुद्र की सार-स्वरूपा कोई एक अनिर्वचनीय सुकुमारी हैं । उन श्रीराधा की जय हो, विजय हो ।

स्वरूप की भावना ५२ शिखरिणी

दुकूलं बिभ्राणामथ कुच तटे कंचुक पटं
प्रसादं स्वामिन्याः स्वकरतल दत्तं प्रणयतः ।
स्थितां नित्यं पार्श्वे विविध परिचर्य्यैक चतुरां
किशोरीमात्मानं किमिह सुकुमारीं नु कलये ॥

अहो ! मैं अपनी स्वामिनीजी के निज कर-कमलों के स्नेह-पूर्वक दिए हुए प्रसाद रूप दुकूल और कञ्चुकि-पट को अपनी कुच-तटी में धारण करूँगी और सदा अपनी स्वामिनी के पार्श्व में स्थित रहकर विविध परि-चर्य्याओं में चतुर सुकुमारी किशोरी के रूप में अपने आपको क्या यहाँ देखूँगी ।

परिचर्य्या प्राप्ति की प्रार्थना ५३ शिखरिणी

विचिन्वन्ती केशान् क्वचन करजैः कंचुक पटं
क्व चाप्यामुञ्चन्ती कुच कनक दीव्यत्कलशयोः ।
सुगुल्फे न्यस्यन्ती क्वचन मणि मञ्जीर युगलं
कदा स्यां श्रीराधे तव सुपरिचारिण्यहमहो ।।

अहो श्रीराधे ! मैं आपकी ऐसी सुपरिचारिका कब बनूँगी ? जो कभी अपने कर-नखों से आपके केशों को सुलझाऊँ ? कभी आपके कनक-कलशों के समान गोल-गोल देदीप्यमान कुच-कलशों पर कञ्चुकि-पट धारण कराऊँ ? तो कभी आपके दोनों सुहावने गुल्फों में मणि के मञ्जीर युगल (नूपुर) पहनाऊँ ?

किङ्करी-भाव ५४ शिखरिणी

अतिस्नेहादुच्चैरपि च हरिनामानि गृणत-
स्तथा सौगन्धाद्यैर्बहुभिरुपचारैश्च यजतः ।
परानन्दं वृन्दावनमनुचरन्तं च दधतो
मनो मे राधायाः पद मृदुल पद्मे निवसतु ।।

मैं अत्यन्त स्नेह-पूर्वक उच्च स्वर से श्रीहरि के नामों का गान करती रहूँ; सुगन्ध आदि अनेक उपचारों से उनका पूजन करती रहूँ तथा श्रीवृन्दावन में अनुचरण करती हुई परमानन्द को धारण करती रहूँ, इसके साथ-साथ मेरा मन निरन्तर श्रीराधिका के मृदुल पाद - पद्मों में ही बसा रहे ।

अनन्यता ५५ शिखरिणी

निज प्राणेश्वर्य्या यदपि दयनीयेयमिति मां
मुहुश्चुम्बत्यालिङ्गति सुरत मद माध्व्या मदयति ।
विचित्रां स्नेहर्द्धि रचयति तथाप्यद्भुत गते–
स्तवैव श्रीराधे पद रस विलासे मम मनः ॥

'मेरी प्राणेश्वरी की यह दया पात्र है', ऐसा जानकर अद्भुत गति-शील प्रियतम मेरा बार-बार चुम्बन करते हैं, और सुरत-मदिरा से मुझे उन्मद बना देते हैं । यद्यपि वे इस प्रकार विचित्र स्नेह-वैभव की रचना करते हैं; तथापि हे श्रीराधे ! मेरा मन तो आपके ही श्रीचरणों के रस-विलास में रहता है ।

विवाहोत्सव वर्णन ५६ शार्दूलविक्रीडितम्

प्रीतिं कामपि नाम मात्र जनित प्रोद्दाम रोमोद्गमां
राधा माधवयोः सदैव भजतोः कौमार एवोज्वलाम् ।
वृन्दारण्य नव-प्रसून निचयानानीय कुञ्जान्तरे
गूढं शैशव खेलनैर्बत कदा कार्य्यो विवाहोत्सवः ॥

श्रीराधा - माधव किसी अनिर्वचनीय उज्ज्वल प्रीति - पूर्ण कौमार अवस्था का ही सेवन करते रहते हैं, जिनमें परस्पर के नामोच्चारण-मात्र में ही प्रफुल्लता-पूर्वक समस्त रोम पुलकित हो उठते हैं । अहो ! क्या कभी ऐसा होगा कि मैं श्रीवृन्दावन से नवीन-नवीन पुष्प चयन करके लाऊँ, तथा शैशवावस्था के खेल ही खेल में किसी गूढ़ कुञ्ज के भीतर हर्ष के साथ दोनों का विवाहोत्सव करूँ ?

सङ्गीत की भावना ५७ पृथ्वी

विपञ्चित सुपञ्चमं रुचिर वेणुना गायता
प्रियेण सहवीणया मधुरगान विद्यानिधिः ।
करीन्द्रवनसम्मिलन्मद करिण्युदारक्रमा
कदा नु वृषभानुजा मिलतु भानुजा रोधसि ॥

जैसे मदमाती करिणी वन में गजराज से मिलन प्राप्त करने के लिये उदार गति से आती हो, ऐसे ही जो मद-गज-माती गति से पाद-विन्यास करती हुई श्रीयमुना के पुलिन पर आ पधारी हैं । तथा अपनी वीणा में सुमधुर गान करती हैं, क्योंकि इस कला की आप निधि हैं । अहा ! आपकी वीणा के पञ्चम स्वर से मिलाकर श्रीलालजी ने भी अपने वेणु की तान छेड़ दी है । ऐसी श्रीवृषभानु-नन्दिनी अपने प्रियतम के साथ मुझे यमुना-तट पर कब मिलेंगी ?

रास-विलासोन्मत्त छबि-दर्शन ५८ पृथ्वी

सहासवर मोहनाद्भुत विलास रासोत्सवे
विचित्रवर ताण्डव श्रमजलार्द्र गण्डस्थलौ ।
कदा नु वरनागरी रसिक शेखरौ तौ मुदा
भजामि पद लालनाल्ललित जीवनं कुर्वती ।।

परम मनोहर हास-युक्त अद्भुत विलास-रासोत्सव में विचित्र और उत्तमोत्तम नृत्य की गतियों के लेने से जिनके युगल गण्डस्थल श्रम-जल (प्रस्वेद) से गीले हो रहे हैं । उन नागरी-मणि श्रीप्रियाजी और रसिक-शेखर श्रीलालजी के पद-कमलों के लालन से जीवन को सुन्दर बनाती हुई, कब आनन्द पूर्वक उनका भजन करूँगी ?

यमुना-स्नान मनोरथ ५६ शार्दूलविक्रीडितम्

वृन्दारण्य निकुंज मंजुल गृहेष्वात्मेश्वरीं मार्गयन्
हा राधे सविदग्ध दर्शित पथं किं यासिनेत्यालपन् ।
कालिन्दी सलिले च तत्कुच तटी कस्तूरिका पङ्किले
स्नायं स्नायमहो कुदेहजमलं जह्यां कदा निर्मलः ।।

"हा राधे ! मैंने चतुर-सङ्केत द्वारा जो पथ आपको दिखलाया है, उस पर न चलोगी क्या ?" मै इस प्रकार विलाप करती और श्रीवृन्दावन के मंजुल निकुञ्ज-गृहों में आपको खोजती हुई फिरूँ तथा आपकी कुच-तटी-चर्चित कस्तूरी से पङ्किल कालिन्दी-सलिल में बारम्बार स्नान करके अपने कुदेह-जनित मल को त्यागकर कब निर्मल होऊँगी ?

परिचर्य्या अभिलाषा ६० शार्दूलविक्रीडितम्

पादस्पर्श रसोत्सवं प्रणतिभिर्गोविन्दमिन्दीवर
श्यामं प्रार्थयितुं सुमंजुल रहः कुञ्जाश्च संमार्जितुम् ।
माला चन्दन गन्ध पूर रसवत्ताम्बूल सत्पानका–
न्यादातुं च रसैक दायिनि तव प्रेष्या कदा स्यामहम् ।।

रस की एकमात्र दाता मेरी स्वामिनि ! प्रणति के द्वारा आपके चरणों का स्पर्श ही जिनके लिये रसोत्सव रूप है, ऐसे इन्दीवर श्याम को आपके प्रति प्राथित करूँ, सुन्दर सुमञ्जुल एकान्त निकुञ्ज-भवन का मार्जन करूँ, तथा पुष्प-माल, चन्दन, इत्रदान (परिमल पात्र), रस युक्त ताम्बूल और अनेक प्रकार के सुस्वादु पेय पदार्थ आपके कुञ्ज-भवन में पहुँचाऊँ, भला, कभी ऐसी टहल करने वाली दासी रूप में आप मुझे स्वीकार करेंगी ?

रसमयी सेवा का स्वरूप ६१ शार्दूलविक्रीडितम्

लावण्यामृत वार्त्तया जगदिदं संप्लावयन्ती शर–
द्राका चन्द्रमनन्तमेव वदनं ज्योत्स्नाभिरातन्वती ।
श्रीवृन्दावन कुंज मंजु गृहिणी काप्यस्ति तुच्छामहो
कुर्वाणाखिल साध्य साधन कथां दत्वा स्वदास्योत्सवम् ।।

जो इस जगत् को अपनी सौन्दर्य्य-सुधा-वाणी से संप्लावित करती हैं तथा जो अपने श्रीमुख की ज्योत्स्ना से मानो शरत्कालीन अनन्त चन्द्रमाओं का प्रकाश विस्तार करती हैं । अहो ! आश्चर्य है कि श्रीवृन्दावन के मञ्जुल-निकुञ्ज-भवन की उन्हीं अनिर्वचनीय स्वामिनी ने अपनी सेवा का आनन्द देकर समस्त साध्य-साधन कथाओं को मेरे लिये तुच्छ कर दिया है ।

संकेत-मिलन भावना ६२ मन्दाक्रान्तावृत्तम्

दृष्ट्वा यत्र क्वचन विहिता म्रेडने नन्दसूनोः
प्रत्याख्यानच्छलत उदितोदार संकेत-देशा ।
धूर्त्तेन्द्र त्वद्भयमुपगता सा रहो नीपवाटयां
नैका गच्छेत्कितव कृतमित्यादिशेत्कर्हि राधा ।।

हे कितव ! हे धूर्त्तशिरोमणि ! आपके दो-तीन-बार प्रार्थना करने पर (उसके उत्तर रूप में) जिन्होंने अपनी दृष्टि के द्वारा उदार संकेत स्थान का निर्देश कर दिया है ऐसी श्रीराधा तुम्हारे वचनों की आशङ्कावश (भय-वश) तुमसे मिलने न जा सकेंगी; तब अनुचरी रूप में सङ्ग चलने के लिये मुझे कब आदेश करेंगी ?

चातुरी ६३ **शार्दूलविक्रीडितम्**

सा भ्रूनर्त्तन चातुरी निरुपमा सा चारुनेत्राञ्चले
लीला खेलन चातुरी वरतनोस्तादृग्वचश्चातुरी ।
संकेतागम चातुरी नव नव क्रीडाकला चातुरी
राधाया जयतात्सखीजन परीहासोत्सवे चातुरी ।।

अहा ! श्रीराधा की निरुपम भृकुटियों की वह नर्त्तन् चातुरी ! सुन्दर-सुन्दर नयन-कोरों का वह लीला-पूर्ण कटाक्ष ! एवं वर-वदनी श्रीस्वामिनी की मनोहर वचन-चातुरी ! एकान्त में आगमन-निर्गमन की चातुरी के साथ-साथ नवीन केलि-कलाओं की विदग्धता और सखिजनों के हास-परिहास आनन्द की चातुरी ! सभी एक से एक बढ़कर हैं—सभी उत्कृष्ट हैं ।

केलि अवलोकन अभिलाषा ६४ **शार्दूलविक्रीडितम्**

उन्मीलन मिथुनानुराग गरिमोदार स्फुरन्माधुरी
धारा-सार धुरीण दिव्य ललितानङ्गोत्सवैः खेलतोः ।
राधा-माधवयोः परं भवतु नः चित्ते चिरार्त्तिस्पृशो
कौमारे नव-केलि शिल्प लहरी शिक्षादि दीक्षा रसः ।।

श्रीराधा-माधव की कौमार-कालीन नवीन-केलि चातुरी-तरङ्गों की परस्पर उपदेश-रूप शिक्षा-दीक्षा का रस परावधि रूप से मेरे चित्त में उदित हो । अहा ! कितने मधुर हैं, ये श्रीराधा माधव ? दोनों के हृदयों में महान-तम उदार अनुराग का विकाश हो रहा है, जिससे माधुर्य्य-धारा की सार-धुरीण का स्फुरण हो रहा है । वह धुरीण क्या है ? दोनों की दिव्यतम ललित अनङ्ग-उत्सव की क्रीड़ा, जो कुमार अवस्था में ही चित्त में बड़ी भारी आर्त्ति को उत्पन्न कर रही है; जिससे दोनों परस्पर एक दूसरे के श्रीअङ्गों का बारम्बार स्पर्श कर रहे हैं ।

व्रज-नगरीय क्रीड़ा दर्शन ६५ शिखरिणीवृत्तम्

कदा वा खेलन्तौ व्रजनगर वीथीषु हृदयं
हरन्तौ श्रीराधा व्रजपति कुमारौ सुकृतिनः।
अकस्मात् कौमारे प्रकट नव कैशोर-विभवौ
प्रपश्यन्पूर्णः स्यां रहसि परिहासादि निरतौ॥

क्या कभी मैं श्रीराधा और श्रीव्रजपति-कुमार का दर्शन करके पूर्णता को प्राप्त होऊँगी ? जो किसी समय व्रज-नगर की वीथियों में खेलते-फिरते एकान्त पाकर अकस्मात् कौमारावस्था को त्याग कर नव किशोरता के वैभव को प्रकट करके दिव्य हास-परिहास में संलग्न हो गये हैं एवं जो अपनी ऐसी प्रेम-केलि से सुकृती-जनों के हृदय का अपहरण कर रहे हैं।

श्रीकिशोरी स्वरूप वर्णन ६६ मन्दाक्रान्तावृत्तम्

धम्मिल्लं ते नव परिमलैरुल्लसत्फुल्ल मल्ली–
मालं भालस्थलमपि लसत्सान्द्र सिन्दूर-विन्दुम्।
दीर्घापाङ्गच्छविमनुपमां चारु चन्द्रांशु हासं
प्रेमोल्लासं तव तु कुचयोर्द्वन्द्वमन्तः स्मरामि॥

हे श्रीराधे ! सौरभ - उल्लसित - नूतन फुल्लमल्ली - माल - गुम्फित आपकी वेणी, ललाट-पटल पर शोभित अत्यन्त लाल सिन्दूर विन्दु, बड़े-बड़े नयनों की अनुपम कटाक्षच्छवि, प्रेमोल्लास-पूर्ण चाँदनी के समान मनोहर हास और आपके युगल वक्षोज की रहस्यता का मैं स्मरण करती हूँ।

परम तत्वमय रूप वर्णन ६७ शार्दूलविक्रीडितम्

लक्ष्मी कोटि विलक्ष्य लक्षण लसल्लीला किशोरीशतै–
राराध्यं व्रजमण्डलेति मधुरं राधाभिधानं परम्।
ज्योतिः किञ्चन सिञ्चदुज्ज्वलरस प्राग्भावमाविर्भव–
द्राधे चेतसि भूरि भाग्य विभवैः कस्याप्यहो जृम्भते॥

जिन व्रज-सुन्दरियों की लीलाओं में कोटि-कोटि लक्ष्मी-समूहों के विशेष लक्षणीय लक्षण शोभा पाते हैं, उन्हीं शत-शत किशोरियों का जो आराध्य है, एवं उज्ज्वल रस के प्रारम्भिक भाव का सिञ्चन करता हुआ देदीप्यमान (ज्योति-स्वरूप) अति मधुर, श्रेष्ठ, श्रीराधा नामक तत्व है। वह [श्रीराधा तत्व] व्रजमण्डल-स्थित किसी भाग्यवान् (महापुरुष) के ध्यान-विभावित चित्त में महाभाग्य वैभव से ही विस्तार को प्राप्त होता है।

उपरोक्तानुसार ही ६८ **शार्दूलविक्रीडितम्**

तज्जीयान्नव यौवनोदय महालावण्य लीलामयं
सान्द्रानन्द घनानुराग घटित श्रीमूर्त्ति सम्मोहनम् ।
वृन्दारण्य निकुंज-केलि ललितं काश्मीर गौरच्छवि
श्रीगोविन्द इव व्रजेन्द्र गृहिणी प्रेमैक पात्रं महः ।।

जो अपने नवीन यौवन के उदय-काल में महान्तम सौन्दर्य्य-लीला से युक्त है तथा जो घनीभूत आनन्द एवं घनानुराग-रचित मूर्त्ति श्रीलालजी का सम्मोहन कर लेता है, जिसकी गौर छबि नवीन केशर के समान है, जो श्रीवृन्दावन-निकुञ्ज-केलि में अति ललित है और जो व्रजेन्द्र-गृहिणी यशोदा किंवा कीर्तिदा के लिये श्रीगोविन्द के समान प्रेम का एक ही पात्र है, वह कोई अनिर्वचनीय तेज जय-जयकार को प्राप्त हो रहा है।

श्रीराधा-स्वरूप वर्णन ६९ **शार्दूलविक्रीडितम्**

प्रेमानन्द-रसैक-वारिधि महा कल्लोलमालाकुला
व्यालोलारुण लोचनाञ्चल चमत्कारेण संचिन्वती ।
किञ्चित् केलिकला महोत्सवमहो वृन्दाटवी मन्दिरे
नन्दत्यद्भुत काम वैभवमयी राधा जगन्मोहिनी ।।

अहो ! प्रेमानन्द-रस के महान् समुद्र की तरङ्ग-मालाओं से आकुल एवं अपने अरुण और चञ्चल नेत्राञ्चलों के चमत्कार (कटाक्ष) से केलि-कला-महोत्सव का सिञ्चन करती हुई अद्भुत प्रेम-वैभवमयी जगन्मोहिनी अनिर्वचनीय श्रीराधा वृन्दावन के निकुञ्ज मन्दिर में आनन्द-विहार करती हैं।

पुनः उपरोक्तानुसार ही ७० शार्दूलविक्रीडितम्

वृन्दारण्य निकुञ्ज सीमनि नव प्रेमानुभाव भ्रम–
द्भ्रूभङ्गी लव मोहित व्रज मणिर्भक्तैक चिन्तामणिः ।
सान्द्रानन्द रसामृत स्रवमणिः प्रोद्दाम विद्युल्लता
कोटि-ज्योतिरुदेति कापि रमणी चूडामणिर्मोहिनी ।।

जिन्होंने नवीन प्रेमानुभाव-प्रकाशन-पूर्ण चञ्चल भ्रू-भङ्गी के लेश-मात्र से ही व्रज-मणि श्रीलालजी को मोहित कर लिया, जो भक्तों के मनोरथों को पूर्ण करने के लिये एक ही चिन्तामणि हैं, जो घनीभूत आनन्द रसामृत की निर्झरिणी-रूपा मणि हैं और जिनकी अङ्ग-ज्योति अत्यन्त प्रकाशमान् कोटि-कोटि विद्युल्लताओं के समान है, वे कोई अनिर्वचनीया महा-मोहिनी रमणी-चूड़ामणि वृन्दावन की निकुञ्ज-सीमा में उदित हो रही हैं।

श्रीराधा-स्वरूप वर्णन ७१ शार्दूलविक्रीडितम्

लीलापाङ्ग तरङ्गतैरुदभवन्नेकैकशः कोटिशः
कन्दर्पाः पुरदर्पटंकृत महाकोदण्ड विस्फारिणः ।
तारुण्य प्रथम प्रवेश समये यस्या महा माधुरी–
धारानन्त चमत्कृता भवतु नः श्रीराधिका स्वामिनी ।।

जिनके तरुणावस्था के प्रथम प्रवेश-काल में ही हाव-भाव पूर्वक किये गये एक-एक अपाङ्ग-नर्त्तन से अत्यन्त दर्प-पूर्ण महा कोदण्ड की टङ्कार को शनैः-शनैः विस्फारित करने वाले कोटि-कोटि कन्दर्प उत्पन्न होते हैं, ऐसी महामाधुरी की अनन्त धाराओं से चमत्कृत श्रीराधिका ही मेरी स्वामिनी हैं।

श्रीराधा-स्वरूप की महिमा ७२ शार्दूलविक्रीडितम्

यत्पादाम्बुरुहैक रेणु-कणिकां मूर्ध्ना निधातुं न हि
प्रापुर्ब्रह्म शिवादयोप्यधिकृतिं गोप्यैक भावाश्रयाः ।
सापि प्रेमसुधा रसाम्बुधिनिधी राधापि साधारणी–
भूता कालगतिक्रमेण बलिना हे दैव तुभ्यं नमः ।।

ओ दैव ! तुझे नमस्कार है ! धन्य है तेरी महिमा ! जिससे प्रेरित होकर काल-क्रम के प्रभाव-वश प्रेमामृत-रस-समुद्र श्रीलालजी की भी निधि श्रीराधिका साधारण (सुलभ) हो गई हैं ! अहो ! जो गोपियों के भावों की एक मात्र आश्रय हैं और जिनकी चरण-कमलों की रेणु के कण-मात्र को ब्रह्मा, शिव आदि भी अपने सिर पर धारण करने की इच्छा रखते हुए भी प्राप्त नहीं कर पाते ।

श्रीराधा-स्वरूप वर्णन　　७३　　शार्दूलविक्रीडितम्

दूरे स्निग्ध परम्परा विजयतां दूरे सुहृन्मण्डली
भृत्याः सन्तु विदूरतो व्रजपतेरन्य प्रसंगः कुतः ।
यत्र श्रीवृषभानुजा कृत रतिः कुञ्जोदरे कामिना,
द्वारस्था प्रिय किङ्करी परमहं श्रोष्यामि कांची ध्वनिम् ॥

जहाँ कुञ्ज-भवन के अभ्यन्तर भाग में परम-प्रेमी श्रीलालजी एवं श्रीवृषभानुनन्दिनीजू की रति-केलि होती रहती है, व्रजपति श्रीलालजी के स्नेही-जनों की परम्परा वहाँ से दूर ही विराजे, एवं उनके सखा-गण भी दूर ही विराजमान् रहें । भृत्य-वर्ग के लोग तो और भी दूर रहें । (इन लोगों के अतिरिक्त) अन्य-जनों का तो वहाँ प्रसङ्ग ही उपस्थित नहीं होता ! यहाँ तो केवल उनकी परम-प्रिय किङ्करी ही द्वार पर स्थित रहकर विहारावसर क्वणित काञ्ची-ध्वनि श्रवण करती है या मैं श्रवण करती हूँ ।

ध्यान दर्शनाभिलाषा　　७४　　शार्दूलविक्रीडितम्

गौराङ्गे म्रदिमा स्मिते मधुरिमा नेत्रांचले द्राघिमा
वक्षोजे गरिमा तथैव तनिमा मध्ये गतौ मन्दिमा ।
श्रोण्यां च प्रथिमा भ्रुवोः कुटिलिमा बिम्बाधरे शोणिमा
श्रीराधे हृदि ते रसेन जडिमा ध्यानेऽस्तु मे गोचरः ॥

हे श्रीराधे ! आपके गौर-अङ्गों की मृदुलता, मन्द-मुस्कान की माधुरी, नेत्राञ्चलों की दीर्घता, उरोजों की पीनता, कटि-प्रान्त की क्षीणता, पाद-न्यास की धीरता, नितम्ब-देश की स्थूलता, भ्रूलताओं की कुटिलता अधर-बिम्बों की रक्तिमा (ललाई) एवं आपके हृदय की रसावेश-जन्य जड़ता मेरे ध्यान में प्रकट हो ।

सुरतान्त सेवाभिलाषा ७५ शार्दूलविक्रीडितम्

प्रातः पीतपटं कदा व्यपनयाम्यन्यांशु कस्यार्पणात्
कुञ्जे विस्मृत कञ्चुकीमपि समानेतुं प्रधावामि वा ।
बध्नीयां कवरीं युनज्मि गलितां मुक्तावलीमञ्जये
नेत्रे नागरि रङ्गकैश्चपि दधाम्यङ्गं व्रणं वा कदा ॥

हे नागरि ! किसी समय प्रातःकाल आपने किसी का पीत-पट भ्रम में बदलकर पहिन लिया होगा, तब मैं उसे बदल-कर नीलाम्बर धारण कराऊँगी । इसी प्रकार निकुञ्ज-भवन में आप अपनी कञ्चुकि भूल आई होंगी, मैं दौड़कर उसे शीघ्रता पूर्वक लाऊँगी । विहार में आपकी कबरी शिथिल हो गई होगी, उसे मैं पुनः बाँधकर सँवार दूंगी । आपकी मुक्तामाल टूट गई होगी, उसे पिरो दूंगी और आपके नेत्रों में फिर से अञ्जन लगाकर, कस्तूरी, कुंकुम, मलय आदि के द्वारा अङ्गों के नख-क्षतों को लेपित कर दूंगी । स्वामिनि ! क्या कभी ऐसा होगा ?

दर्शन-लालसा ७६ शार्दूलविक्रीडितम्

यद्वृन्दावन - मात्र गोचरमहो यन्नश्रुतीकं शिरो–
प्यारोढुं क्षमते न यच्छिव शुकादीनां तु यद्ध्यानगम् ।
यत्प्रेमामृत - माधुरी रसमयं यन्नित्य कैशोरकं
तद्रूपं परिवेष्टुमेव नयनं लोलायमानं मम ॥

अहो ! जो केवल श्रीवृन्दावन में ही दृष्टिगोचर होता है, अन्यत्र नहीं। जिसका वर्णन करने में श्रुति-शिरोभाग उपनिषद् भी समर्थ नहीं हैं । जो शिव और शुक आदि के भी ध्यान में नहीं आता, जो प्रेमामृत-माधुरी से परिपूर्ण है और जो नित्य किशोर है । उस रूप को देखने के लिये मेरे नेत्र खोजते फिरते हैं—चञ्चल हो रहे हैं ।

इष्ट कैंकर्य महिमा ७७ शार्दूलविक्रीडितम्

धर्माद्यर्थ चतुष्टयं विजयतां किं तद्वृथा वार्त्तया
सैकान्तेश्वर - भक्तियोग पदवी त्वारोपिता मूर्द्धनि ।
यो वृन्दावन सीम्नि कञ्चन घनाश्चर्य्यः किशोरीमणि–
स्तत्कैङ्कर्य्यं रसामृतादिह परं चित्ते न मे रोचते ॥

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये उत्तम चार फल यदि विश्व में उत्कृष्टता को प्राप्त हैं तो भले ही रहें, हमें इनकी व्यर्थ चर्चा से क्या ? और ईश्वर की उस एकान्त भक्ति-योग-पदवी को भी हम सिर-माथे चढ़ाते हैं, अर्थात् भक्ति-योग का आदर तो करते हैं पर उससे भी क्या लेना-देना है ? हमारे चित्त को तो श्रीवृन्दावन की सीमा में विराजमान् किसी घनीभूत आश्चर्य्यरूपा किशोरी-मणि के कैङ्कर्य्यं रसामृत के अतिरिक्त और कुछ भी अच्छा नहीं लगता ।

श्रीराधिका-परत्व वर्णन ७८ शार्दूलविक्रीडितम्

प्रेम्णः सन्मधुरोज्ज्वलस्य हृदयं श्रृंगारलीलाकला
वैचित्री परमावधिर्भगवतः पूज्यैव कापीशता ।
ईशानी च शची महासुख तनुः शक्तिः स्वतन्त्रा परा
श्रीवृन्दावन नाथ पट्टमहिषी राधैव सेव्या मम ॥

जो मधुर और उज्ज्वल प्रेम की प्राण-स्वरूपा, शृङ्गार-लीला की विचित्र कलाओं की परम अवधि, भगवान् श्रीकृष्ण की आराधनीया कोई अनिर्वचनीया शासन-कर्त्री हैं । जो ईश्वर-रूप श्रीकृष्ण की शची हैं तथा परम सुखमय वपु-धारिणी परा और स्वतंत्रा शक्ति हैं । वे श्रीवृन्दावन-नाथ—श्रीलालजी की पटरानी श्रीराधा ही मेरी सेव्या—आराधनीया हैं ।

उपरोक्तानुसार ही ७९ शार्दूलविक्रीडितम्

राधा दास्यमपास्य यः प्रयतते गोविन्द सङ्गाशया
सोयं पूर्ण सुधारुचेः परिचयं राकां विना कांक्षति ।
किञ्च श्याम रति-प्रवाह[1] लहरी बीजं न ये तां विदु-
स्ते प्राप्यापि महामृताम्बुधिमहो बिन्दुं परं प्राप्नुयुः ॥

जो लोग श्रीराधा के चरणों का सेवन छोड़कर गोविन्द के सङ्ग-लाभ की चेष्टा करते हैं, वे तो मानों पूर्णिमा-तिथि के विना ही पूर्ण सुधाकर का परिचय प्राप्त करना चाहते हैं । वे अज्ञ यह नहीं जानते कि श्याम-सुन्दर के रति-प्रवाह की लहरियों का बीज यही श्रीराधा हैं । आश्चर्य्य है कि ऐसा न जानने से ही वे अमृत का महान् समुद्र पाकर भी उसमें से केवल एक बूंद मात्र ही ग्रहण कर पाते हैं !

१—पाठान्तर—श्याम प्रवाह वारि ।

अनन्य रसिक-जनों के प्रति नमन ८० शार्दूलविक्रीडितम्

कैशोराद्भुत माधुरी-भर धुरीणाङ्गच्छविं राधिकां
प्रेमोल्लास भराधिकां निरवधि ध्यायन्ति ये तद्धियः ।
त्यक्ताः कर्मभिरात्मनैव भगवद्धर्मेप्यहो निर्ममाः
सर्वाश्चर्य्यं गतिं गता रसमयीं तेभ्यो महद्भ्यो नमः ॥

किशोरावस्था के अद्‌भुत माधुरी-प्रवाह से जिनके अङ्ग-अङ्ग की छबि सर्वाग्रगण्य हो रही है, तथा जो प्रेमोल्लास-प्रवाह के द्वारा सर्व-श्रेष्ठता को प्राप्त हैं, ऐसी श्रीराधिका का जो महापुरुष तद्‌गत-चित्त से निरन्तर ध्यान करते हैं, उन्होंने कर्मों को नहीं छोड़ा, वरन् कर्मों ने ही उन्हें छोड़ दिया है और वे परम श्रेष्ठ भगवद्धर्म की ममता से भी मुक्त होकर सर्वाश्चर्य्य पूर्ण परम रस-मयी गति को प्राप्त हो चुके हैं। उन महान् पुरुषों के लिये बारम्बार नमस्कार है।

रसिक स्वरूप वर्णन ८१ पृथ्वी छन्दम्

लिखन्ति भुजमूलतो न खलु शंख-चक्रादिकं
विचित्र हरिमन्दिरं न रचयन्ति भालस्थले ।
लसत्तुलसि मालिकां दधति कण्ठपीठे न वा
गुरोर्भजन विक्रमात्क इह ते महाबुद्धयः ॥

श्रीगुरु के भजन रूप पराक्रम-युक्त वे कोई महाबुद्धिमान् पुरुष-गण इस पृथ्वी पर विरले ही हैं, जो न तो अपने बाहु-मूल में कभी शङ्ख-चक्रादि (वैष्णव-चिह्न) धारण करते और न कभी ललाट-पटल पर विचित्र हरि-मन्दिर (तिलक) ही रचते हैं और न उनके कण्ठ-भाग में सुहावनी तुलसी की मालिका ही धारण होती है, (उन्हें तो इन सब बाह्य लक्षणों की सुधि ही नहीं, वे किसी अन्तरङ्ग रस में डूब रहे हैं।)

उपरोक्तानुसार ही ८२ शार्दूलविक्रीडितम्

कर्माणि श्रुति बोधितानि नितरां कुर्वन्तु कुर्वन्तु मा
गूढाश्चर्य्य रसाः स्रगादि विषयान्गृह्णन्तु मुञ्चन्तु वा ।
कैर्वा भाव-रहस्य पारग-मतिः श्रीराधिका प्रेयसः
किञ्चिज्ज्ञैरनुयुज्यतां वहिरहो ग्राम्यैर्द्भिरन्यैरपि ॥

गूढ़ाश्चर्य्य रूप उज्ज्वल रसाश्रित रसिक-गण वेदोक्त कर्मकाण्ड का अनुष्ठान करें या न करें, माला,चन्दन आदि विषय-समूह अर्थात् भोग-विलास के उपकरण गृहण करें या न करें। इससे उनको न कोई हानि है और न लाभ ही। अहो! श्रीराधाकान्त के भाव में पारङ्गत-मति ऐसे रसिक क्या कभी अल्पज्ञ, वहिर्मुख अथवा अन्य सकाम पुरुषों में से किसी के साथ मिल सकते हैं? क्या कभी इस प्रकार के लोगों के साथ उनका मेल खा सकता है? नहीं।

रसिकजन-मनः स्थिति ८३ **पृथ्वी छन्दम्**

अलं विषय वार्त्तया नरक कोटि वीभत्सया,
वृथा श्रुति कथाश्रमो वत विभेमि कैवल्यतः।
परेश-भजनोन्मदा यदि शुकादयः किं ततः,
परं तु मम राधिका पदरसे मनो मज्जतु॥

विषय-चर्चा बहुत हो चुकी, इसे बन्द करो; क्योंकि यह कोटि-कोटि नरकों के समान घृणित है। श्रुति-कथा भी व्यर्थ श्रम ही है। अहो! हमें तो कैवल्य से भय प्रतीत होता है (क्योंकि वह नाम-रूप रहित है)। परम पुरुष भगवान् के भजन में उन्मत्त यदि कोई शुक आदि हैं, तो रहने दो; हमें उनसे क्या प्रयोजन? हमारा मन तो केवल श्रीराधा के पद रस में ही डूबा रहे, (यह अभिलाषा है।)

अविस्मरणीय-स्वरूप ८४ **मन्दाक्रान्तावृत्तम्**

तत्सौन्दर्य्यं स च नववयो यौवनश्री प्रवेशः
सा दृग्भङ्गी स च रसघनाश्चर्य्य वक्षोज कुम्भः।
सोयं विम्बाधर मधुरिमा तत्स्मितं सा च वाणी
सेयं लोला गतिरपि न विस्मर्यते राधिकायाः॥

अहा! स्वामिनी श्रीराधिका का वह सौन्दर्य्य! वह नवीन वय में यौवन-श्री का प्रवेश! वह नेत्रों की भङ्गिमा! घनीभूत रस और आश्चर्य से परिपूर्ण वे युगल स्तन-कलश! इसी प्रकार लाल विम्बाफलों के समान अधरों की वह मधुरिमा, साथ ही मन्द-मन्द मुसकान और रसमयी वाणी! एवं वह लीलापूर्ण पाद-न्यास (मन्द-मन्द चलना) तो भूलता ही नहीं!!

दास्य अभिलाषा ८५ शार्दूलविक्रीडितम्

यल्लक्ष्मी शुक नारदादि परमाश्चर्य्यानुरागोत्सवैः
प्राप्तं त्वत्कृपयैव हि व्रजभृतां तत्तत्किशोरी-गणैः ।
तत्कैङ्कर्य्यमनुक्षणाद्भुत रसं प्राप्तुं धृताशे मयि
श्रीराधे नवकुञ्ज नागरि कृपा-दृष्टिं कदा दास्यसि ॥

हे नव-कुञ्ज नागरि ! मैं आपके उस कैङ्कर्य्य-प्राप्ति की आशा को धारण किये हुए हूँ । जिससे क्षण-क्षण में अद्भुत रस की प्राप्ति होती है और जिसे उन अनुराग-उत्सव मयी व्रज-किशोरी गणों ने प्राप्त किया था, जिन गोपी-जनों के अनुराग-उत्सव की लालसा लक्ष्मी, शुक, नारद आदि को भी रहती है । हे श्रीराधे ! मेरे लिये आप अपनी उस कृपा-दृष्टि का दान क्या कभी करोगी ?

उच्छिष्ट प्रसादाभिलाषा ८६ मन्दाक्रान्तावृत्तम्

लब्ध्वादास्यं तदति कृपया मोहन स्वादितेन,
सौन्दर्य्यश्री पदकमलयोर्लालनैः स्वापितायाः ।
श्रीराधाया मधुर-मधुरोच्छिष्ट पीयूष सारं,
भोजं-भोजं नव-नव रसानन्द मग्नः कदा स्याम् ॥

श्रीस्वामिनीजी के युग-पद-कमल सौन्दर्य्यश्री की राशि हैं । उन चरणों को अच्छी तरह से पलोट कर प्यारे ने आपको शयन करा दिया है और श्री लालजी ने आपके मधुर-मधुर अमृत-सार रूप उच्छिष्ट प्रसाद को आपकी अत्यन्त कृपा से प्राप्त करके स्वाद लिया है , मैं उसी प्रसाद को प्राप्त करूँ। इस प्रकार मैं आपका दास्य प्राप्त करके कब नव-नव रसानन्द में मग्न होऊंगी ?

निष्ठा स्वरूप ८७ शिखरिणीवृत्तम्

यदि स्नेहाद्राधे दिशसि रति-लाम्पट्य पदवीं
गतं ते स्वप्रेष्ठं तदपि मम निष्ठं शृणु यथा ।
कटाक्षैरालोके स्मित सहचरैर्जात पुलकं
समाश्लिष्याम्युच्चैरथ च रसये त्वत्पद रसम् ॥

हे राधे ! रति-लाम्पटच-पदवी-प्राप्त अपने प्रियतम के प्रति जब आप स्नेहवश मुझे सौंप देंगी तब भी मेरी निष्ठा क्या होगी, उसे सुनिये— "मैं मन्द-मन्द मुसकान के साथ तिरछे नेत्रों से प्यारे की ओर देखूँगी बस इतने मात्र से ही उनका शरीर रोमाञ्चित हो जायगा । पश्चात् मैं उन्हें पुनः एक गाढ़-आलिङ्गन भी करूँगी, जिससे और भी वे प्रेम-विह्वल हो जावेंगे किन्तु इतना सब होते हुए भी मुझे आपके रस-मय चरण-कमलों का ही रसानुभव होगा" ।

व्यङ्ग रसवार्त्ता ८८ मन्दाक्रान्तवृत्तम्

कृष्णः पक्षो नवकुवलयं कृष्ण सारस्तमालो,
नीलाम्भोदस्तव रुचिपदं नाम रूपैश्च कृष्णा ।
कृष्णे कस्मात्तव विमुखता मोहन-श्याम मूर्त्ता,
वित्युक्त्वा त्वां प्रहसित मुखीं किन्नु पश्यामि राधे ।।

"हे श्रीराधे ! कृष्ण-पक्ष अथवा श्रीकृष्ण के पक्ष वाले, नवीन नील-कमल, कृष्ण-सार मृग, श्याम-तमाल, नील सजल मेघ एवं कृष्णा नाम रूप वाली कृष्णा (यमुना) ये सब के सब आपको प्रिय हैं, फिर क्या कारण है कि आपने श्याम-मूर्ति मनमोहन श्रीकृष्ण से ही विमुखता धारण कर रखी है" ?

स्वामिनि ! इस प्रकार कहने के पश्चात् क्या मैं आपको प्रहसित-मुखी (विगत-माना) न देख सकूँगी ?

अनुगमन भावना ८९ शार्दूलविक्रीडितम्

लीलापाङ्गतरङ्गितैरिव दिशो नीलोत्पल श्यामला,
दोलायत्कनकाद्रि मण्डलमिव व्योमस्तनैस्तन्वतीम् ।
उत्फुल्लस्थल पङ्कजामिव भुवं रासे पदन्यासतः
श्रीराधामनुधावतीं व्रज-किशोरीणां घटां भावये ।।

जिनके लीला-पूर्ण कटाक्षों की तरंगें मानों समस्त दिशाओं को नील-कमल की श्यामलता प्रदान करती हैं एवं जिनके स्तन-मण्डल आकाश में दोलायमान् कनक-गिरि का विस्तार करते हैं । जिनके द्वारा रास-मण्डल में किया गया पाद-विन्यास पृथ्वी को प्रफुल्लित स्थल-कमल (गुलाब) की तरह सुशोभित करता है । श्रीराधा की अनुगामिनि उन व्रज-किशोरी-गणों की मैं भावना करती हूँ ।

कृपा याचना ९० पृथ्वीवृत्तम्

दृशौ त्वयि रसाम्बुधौ मधुर मीनवद्भ्राम्यतः,
स्तनौ त्वयि सुधा-सरस्यहह चक्रवाकाविव ।
मुखं सुरतरङ्गिणि त्वयि विकासि हेमाम्बुजं,
मिलन्तु मयि राधिके तव कृपा तरङ्गच्छटाम् ।।

अहो राधिके ! आपका सम्पूर्ण श्रीवपु ही मानो एक विशाल रस-समुद्र है। उस रस-सागर में आपके युगल-नयन ही मानों मीन की तरह भ्रमण करते फिरते हैं , एवं सुधा-सरिता में विहार करने वाले युगल चक्रवाक आपके ये स्तन-द्वय ही हैं। हे सुरतरङ्गिणि ! आपका यह गौर-मुख ही मानों विकसित स्वर्ण-कमल है । स्वामिनि ! मुझे आपके कृपा-तरङ्ग की छटा प्राप्त हो।

पुनः उपरोक्त भावानुसार ही ९१ स्रग्धरावृत्तम्

कान्ताढ्याश्चर्य्य कान्ता कुलमणि कमला कोटि काम्यैक पादा-
म्भोजभ्राजन्नखेन्दुच्छवि लव विभवा काप्यगम्याकिशोरी ।
उन्मर्याद प्रवृद्ध प्रणय-रस महाम्भोधि गम्भीर-लीला,
माधुर्य्योज्जृम्भिताङ्गी मयि किमपि कृपा-रङ्गमङ्गी करोतु ।।

जो अपने कान्त-धन से धनी हैं, जो आश्चर्य्यमयी कान्ताओं की कुलमणि हैं। जिनके पद-कमल-शोभी नख-चन्द्र का कान्ति-कण कोटि-कोटि कमलाओं का एक-मात्र इच्छित वैभव है, एवं जिनका श्रीअङ्ग अमर्य्यादित प्रवृद्धमान् प्रणय-रस रूप महासिन्धु के गम्भीर लीला-माधुर्य्य से उल्लसित है। वे कोई सबसे अगम्य किशोरी अपने कृपा-रस से रञ्जित करके क्या मुझे अङ्गीकार करेंगी ?

प्रार्थना ९२ पृथ्वीवृत्तम्

कलिन्द-गिरि-नन्दिनी-पुलिन मालती-मन्दिरे,
प्रविष्ट बनमालिनाललित-केलि लोली-कृते ।
प्रतिक्षण चमत्कृताद्भुतरसैक—लीलानिधे,
विधेहि मयि राधिके तव कृपा-तरङ्गच्छटाम् ।।

कलिन्द-गिरि-नन्दिनी यमुना के पुलिनवर्त्ती मालती-मन्दिर में प्रवेश करके वनमाली श्रीलालजी ने अपनी ललित-केलि से जिनको चञ्चल कर दिया है, तथा प्रतिक्षण जिनसे अद्‌भुत लीला-रस का समुद्र चमत्कृत होता रहता है, ऐसी हे राधिके ! आप अपनी कृपा-तरङ्ग-छटा का मुझ पर विस्तार कीजिये ।

श्री राधा स्वरूप वर्णन एवं प्रणाम ६३ शार्दूलविक्रीडितम्

यस्यास्ते बत किङ्करीषु बहुशश्चाटूनि वृन्दाटवी,
कन्दर्पः कुरुते तवैव किमपि प्रेप्सुः प्रसादोत्सवम् ।
सान्द्रानन्द घनानुराग–लहरी निस्यंदि पादाम्बुज,
द्वन्द्वे श्रीवृषभानुनन्दिनि सदा वन्दे तव श्रीपदम् ।।

वृन्दाटवी-कन्दर्प श्रीलालजी आपके प्रसादोत्सव की वाञ्छा से आपकी किङ्करियों की अत्यन्त हर्ष-पूर्वक अधिकाधिक चाटुकारी करते हैं तथा आपके जिन युगल चरण-कमलों से सदा ही घनीभूत आनन्द एवं अनुराग की लहरी प्रवाहित होती रहती हैं; हे वृषभानुनन्दिनि ! मैं आपके उन्हीं श्रीचरणों की सदा वन्दना करती हूँ ।

नाम महिमा ६४ शार्दूलविक्रीडितम्

यज्जापः सकृदेव गोकुलपतेराकर्षकस्तत्क्षणा –
द्यत्र प्रेमवतां समस्त पुरुषार्थेषु स्फुरेत्तुच्छता ।
यन्नामाङ्कित मन्त्र जापनपरः प्रीत्या स्वयं माधवः
श्रीकृष्णोऽपि तदद्भुतं स्फुरतु मे राधेति वर्णद्वयम् ।।

जिसका एक-बार मात्र उच्चारण गोकुल-पति श्रीकृष्ण को तत्क्षण आकर्षित करने वाला है, जिससे प्रेमियों के लिये अर्थ, धर्मादि समस्त पुरुषार्थों में तुच्छता का स्फुरण होने लगता है, एवं जिस नाम से अङ्कित मन्त्रराज (द्वादशाक्षर-मन्त्र) के जपने में माधव श्रीकृष्ण भी सदा-सर्वदा प्रीति-पूर्वक संलग्न रहते हैं । वही अत्यद्‌भुत दो वर्ण 'राधा' मेरे हृदय में स्फुरित हों ।

पुनः नाम महिमा ९५ शार्दूलविक्रीडितम्

कालिन्दी—तट कुञ्ज-मंदिरगतो योगीन्द्र वद्यत्पद-
ज्योतिर्ध्यान परः सदा जपति यां प्रेमाश्रुपूर्णो हरिः ।
केनाप्यद्भुतमुल्लसद्रतिरसानन्देन सम्मोहिता,
सा राधेति सदा हृदि स्फुरतु मे विद्यापरा द्वयक्षरा ।।

योगीन्द्रों के समान जिनकी चरण-ज्योति के ध्यान-परायण होकर प्रेमाश्रु-पूर्ण नेत्र तथा गद्-गद् वाणी से कालिन्दी-तट के किसी निकुञ्ज-मन्दिर में विराजमान् श्रीहरि भी स्वयं जिस नाम का जप करते हैं। वही अनिर्वचनीय अद्भुत उल्लासमय एवं रति-रसानन्द से सम्मोहित 'राधा' इन दो अक्षरों की पराविद्या मेरे हृदय में सदा स्फुरित रहे ।

नाम महिमा ९६ शार्दूलविक्रीडितम्

देवानामथ भक्त मुक्त सुहृदामत्यन्त दूरं च यत्,
प्रेमानन्द रसं महा सुखकरं चोच्चारितं प्रेमतः ।
प्रेम्णाकर्णयते जपत्यथ मुदा गायत्यथालिष्वयं,
जल्पत्यश्रुमुखो हरिस्तदमृतं राधेति मे जीवनम् ।।

जो देवताओं, भक्तों, मुक्तों और स्वयं श्रीलालजी के सुहृद्-वर्गों से भी अत्यन्त दूर है, जो प्रेमानन्द-रस स्वरूप है, जो प्रेम-पूर्वक उच्चरित होने पर महा सुखकर है। श्रीलालजी स्वयं जिसको श्रवण करते एवं जप करते हैं अथवा सखी-गणों के मध्य में प्रीति-पूर्वक गान भी करते हैं और कभी प्रेमाश्रु-पूर्ण मुख से जिसका बारम्बार उच्चारण करते हैं, वही 'श्रीराधा' नामामृत मेरा जीवन है।

प्रार्थना ९७ शार्दूलविक्रीडितम्

या वाराधयति प्रियं व्रजमणिं प्रौढानुरागोत्सवैः,
संसिद्ध्यन्ति यदाश्रयेण हि परं गोविन्द सख्युत्सुकाः ।
यत्सिद्धिः परमापदैक रसवत्याराधनात्ते नु सा
श्रीराधा श्रुतिमौलि-शेखर-लता नाम्नी मम प्रीयताम् ।।

जिस प्रकार ब्रजमणि प्रियतम उनका आराधन करते हैं, उसी प्रकार वे भी प्रकृष्ट अनुराग के उल्लास से परिपूर्ण होकर अपने प्रियतम का आराधन करती हैं। गोविंद के साथ सख्य-भाव-प्राप्ति के लिये उत्सुक-जन भी जिनके आश्रय से परम-सिद्धि को प्राप्त होते हैं, जिनके आराधन से परम पद रूपा कोई रसवती सिद्धि प्राप्त होती है, वही श्रीराधा नाम्नी श्रुति-मौलि-शेखर-लता मुझ पर प्रसन्न हों।

राधा स्वरूप वर्णन　　　　९८　　　　शार्दूलविक्रीडितम्

गात्रे कोटि तडिच्छवि प्रविततानन्दच्छवि श्रीमुखे,
विम्बोष्ठे नव विद्रुमच्छवि करे सत्पल्लवैकच्छवि।
हेमाम्भोरुह कुड्मलच्छवि कुच-द्वन्द्वेऽरविन्देक्षणं,
वन्दे तन्नव कुञ्ज-केलि-मधुरं राधाभिधानं महः॥

जिसके गात्र में कोटि-कोटि दामिनियों की छवि है, जिसके मुख से मानो आनन्द-रूप छवि का ही विस्तार हो रहा है। विम्बोष्ठ में नव-विद्रुम की छवि तथा करों में सुन्दर नवीन पल्लवों की छवि जगमगा रही है। जिसके युगल कुचों में स्वर्ण-कमल की कलियों की छवि है, उसी अरविन्द-नेत्रा, नव-कुञ्ज-केलि-मधुरा राधा-नामक ज्योति की मैं वन्दना करती हूँ।

आशीर्वाद वाञ्छा　　　　९९　　　　मान्दाक्रान्तावृत्तम्

मुक्ता-पंक्ति प्रतिमदशना चारुविम्बाधरोष्ठी,
मध्येक्षामा नव-नव रसावर्त गम्भीर नाभिः।
पीन-श्रोणिस्तरुणि मसमुन्मेष लावण्यसिन्धु-
वैंदग्धीनां किमपि हृदयं नागरी पातु राधा॥

जिनकी मनोहर दन्तावली मुक्तापंक्ति के तुल्य है, चारु अधरोष्ठ बिम्बा-फल के समान हैं; कटि अत्यन्त क्षीण है और गम्भीर नाभि में नव-नव रसों की भंवरें पड़ रही हैं। जिनका नितम्ब-देश विशेष पीन (पृथुल) है, तथा नव-यौवन के विकास के कारण जो लावण्य की सिन्धु बन रही हैं। किन्हीं परम विदग्धाओं (चतुराओं) में भी कोई अनिर्वचनीय मणि रूपा नागरी श्रीराधा मेरी रक्षा करें।

प्रत्यक्ष-दर्शन अभिलाषा १०० शार्दूलविक्रीडितम्

स्निग्धा कुञ्चित नील केशि विदलद्बिम्बोष्ठि चन्द्रानने,
खेलत्खञ्जन गञ्जनाक्षि रुचिमन्नासाग्र मुक्ताफले।
पीन-श्रोणि तनूदरि स्तन तटी वृत्तच्छटात्यद्भुते,
राधे श्रीभुजवल्लि चारु वलये स्वं रूपमाविष्कुरु॥

हे सचिक्कन नील-कुञ्चित केशिनि ! हे पक्व-बिम्बाधरे ! हे चन्द्रानने ! हे चञ्चल खञ्जन-मान-मर्दन नयने ! हे रुचिर नासाग्र-भाग-शोभित-मुक्ताफले ! हे पृथु-नितम्बे ! हे कृशोदरि ! स्तन-तटी स्थित अद्भुत वर्त्तुल छटा युक्त हे श्रीराधे ! हे भुजवल्लि चारु बलये !! आप अपने (इस) रूप का (मेरे लिये) प्रकाश कीजिये— प्रत्यक्ष कीजिये।

एक अत्यद्भुत झाँकी १०१ शार्दूलविक्रीडितम्

लज्जान्तः पटमारचय्य रचितस्मायं प्रसूनाञ्जलौ,
राधाङ्गे नवरङ्ग धाम्नि ललित प्रस्तावने यौवने।
श्रोणी-हेम-वरासने स्मरनृपेणाध्यासिते मोहने,
लीलापाङ्ग विचित्र ताण्डव-कला पाण्डित्यमुन्मीलति॥

लज्जा-यवनिका डालकर मुसकान पुष्पाञ्जलि की रचना द्वारा ललित यौवन की प्रस्तावना की गई है। जहाँ कन्दर्प-नृपति द्वारा अधिष्ठित श्रोणी ही स्वर्ण-सिंहासन है। उस नव-रङ्ग-भूमि रूप श्रीराधाङ्ग में लीला-पूर्ण कटाक्षों का विचित्र ताण्डव-कला-पाण्डित्य प्रकाशित हो रहा है।

आशीर्वाद की याचना १०२ शार्दूलविक्रीडितम्

सा लावण्य चमत्कृतिर्नव वयो रूपं च तन्मोहनं,
तत्तत्केलि कला-विलास-लहरी-चातुर्य्यमाश्चर्य भूः।
नो किञ्चित् कृतमेव यत्र न नुतिर्नागो न वा सम्भ्रमो,
राधा-माधवयोः स कोपि सहजः प्रेमोत्सवः पातु वः॥

अहा ! जिसमें लावण्य का वह चमत्कार ! वह नवीन वय और महा मोहन रूप ! वह केलि-कला-विलास की तरङ्गों की चातुरी विद्यमान है; जिस सर्वाश्चर्य्य की भूमि में। जहाँ किञ्चित् मात्र सोद्देश्य कर्म भी नहीं है। जहाँ न तो स्तुति है, न अपराध और न सम्भ्रम ही। श्रीराधा-माधव का ऐसा कोई अनिर्वचनीय और स्वाभाविक प्रेमोत्सव तुम्हारी (रसिक-जनों की) रक्षा करे।

श्रीचरण-कमल दर्शन लालसा १०३ मन्दाक्रान्तावृत्तम्

येषां प्रेक्षां वितरति नवोदार गाढानुरागान्,
मेघश्यामो मधुर-मधुरानन्द मूर्तिर्मुकुन्दः।
वृन्दाटव्यां सुमहिम चमत्कार कारीण्यहो किं,
तानि प्रेक्षेद्भुत रस निधानानि राधा पदानि॥

जिन चरणारविन्दों की महिमा श्रीवृन्दा कानन में चमत्कृत हो रही है। जो रस के अद्भुत निधान हैं एवं नवीन और उदार अनुराग-पूर्ण मधुर-मधुरानन्द-मूर्ति घनश्याम मुकुन्द भी जिनके दर्शन की अभिलाषा का विस्तार करते रहते हैं; वे श्रीराधा-पद-कमल क्या मेरे नयन-गोचर होंगे?

रस-मय केलि-दर्शन की अभिलाषा १०४ शिखरिणीवृत्तम्

बलान्नीत्वा तल्पं किमपिपरिरभ्याधर-सुधां,
निपीय प्रोल्लिख्य प्रखर-नखरेण स्तनभरम्।
ततो नीवीं न्यस्ते रसिक-मणिना त्वत्कर-धृते,
कदा कुञ्जच्छिद्रे भवतु मम राधेनुनयनम्॥

राधे! रसिक-शिरोमणि प्रियतम ने आपको आग्रह-पूर्वक केलि-शय्या पर ले जाकर किसी अनिर्वचनीय प्रकार से परिरम्भण करके अधर-सुधा का पान किया हो और उन्होंने अपने प्रखर नखों से आपके स्तन-मण्डल को रेखाङ्कित किया हो, तत्पश्चात् आपके दोनों कर-कमलों को पकड़ कर नीबी-बन्धन का मोचन कर दिया हो; मैं निकुञ्ज भवन में रन्ध्र से लगी यह सब कब देखूंगी?

शृङ्गार करने की अभिलाषा १०५ शिखरिणीवृत्तम्

करं ते पत्रालिं किमपि कुचयोः कर्त्तुमुचितं,
पदं ते कुञ्जेषु प्रियमभिसरन्त्या अभिसृतौ।
दृशौ कुञ्जच्छिद्रैस्तव निभृत-केलिं कलयितुं,
यदा वीक्षे राधे तदपि भविता किं शुभ-दिनम्॥

हे श्रीराधे ! मेरा ऐसा शुभ-दिन कब होगा, जब मैं आपके कुच-तटों पर अनिर्वचनीय पत्र-रचना करने के योग्य अपने हाथों को, कुञ्जों में प्रियतम के प्रति अभिसरण करती हुई आपका अनुगमन करने योग्य अपने पदों को, एवं कुञ्ज-छिद्रों से आपकी रहस्य-केलि दर्शन-योग्य अपने दोनों नयनों को देखूंगी ?

पूर्व भावानुसार ही १०६ शिखरिणीवृत्तम्

रहो गोष्ठी श्रोतुं तव निज विटेन्द्रेण ललितां,
करे धृत्वा त्वां वा नव-रमण-तल्पे घटयितुम्।
रतामर्दस्रस्तं कचभरमथो संयमयितुं,
विदध्याः श्रीराधे मम किमधिकारोत्सव-रसम्॥

हे श्रीराधे ! आपके अति लम्पट प्रियतम के साथ आपका अपना मधुर रहस्यालाप श्रवण करने का, अथवा हाथ पकड़कर आपको नव-रमण शय्या तक पहुँचाने का, एवं केलि-सम्मर्द-विगलित आपके केश-पाश को संयत करने का अधिकारोत्सव-रस, क्या आप मुझे प्रदान करेंगी ?

विशद निकुञ्ज-केलि १०७ मन्दाक्रान्तावृत्तम्

वृन्दाटव्यां नव-नव रसानन्द पुञ्जे निकुञ्जे,
गुञ्जद्भृङ्गी-कुल मुखरिते मञ्जु-मञ्जु प्रहासे।
अन्योन्य क्षेपण निचयन प्राप्त सङ्गोपनाद्यैः
क्रीडज्जीयाद्रसिक मिथुनं क्लृप्त केली-कदम्बम्॥

श्रीवृन्दावन-स्थित नव-नव रसानन्द-पुञ्ज-निकुञ्ज जो गुञ्जन-शील भृङ्गी-कुल द्वारा मुखरित है, वहाँ मधुर-मधुर परिहास-पूर्वक परस्पर (गेंद) फेंकने, संग्रह करने और प्राप्त करके छुपा लेने, इत्यादि क्रीड़ाओं में रत केलि-समूह-सुसज्जित रसिक-मिथुन जय का प्राप्त हो रहे हैं ।

दर्शनाभिलाषा **१०८** **शार्दूलविक्रीडितम्**

रूपं शारद-चन्द्र-कोटि-वदने धम्मिल्लमल्लीस्रजा–
मामोदैर्विकली कृतालि-पटले राधे कदा तेऽद्भुतम् ।
ग्रैवेयोज्वल कम्बु-कण्ठि मृदुदोर्वल्ली चलत्कङ्कणे,
वीक्षे पट्ट-दुकूल-वासिनि रणन्मञ्जीर पादाम्बुजे ।।

हे शरत्कालीन कोटि चन्द्रवदने ! हे केश-पाश-गुम्फित-मल्लीमाल-आमोद-द्वारा भ्रमरावलि-विकल-कारिणे ! हे उज्ज्वल कण्ठाभरण - युक्त कम्बु-ग्रीवे ! हे मृदुल - बाहुवल्लरि - संचलत्कङ्कणे ! हे कौशेय दुकूल-धारिणि ! हे शब्दित नूपुर पादाम्बुजे ! हे श्रीराधे ! क्या मैं कभी आपके इस अद्भुत रूप को देखूँगी ?

मनोहर मनोरथ **१०९** **पृथ्वीवृत्तम्**

इतोभयमितस्त्रपा कुलमितो यशः श्रीरितो–
हिनस्त्यखिल शृङ्खलामपि सखीनिवासस्त्वया ।
सगद्गद्मुदीरितं सुबहु मोहना काङ्क्षया,
कथं कथमयीश्वरि प्रहसितैः कदा म्रेडचसे ।।

"अयि स्वामिनि ! सखी-निवास श्रीलालजी ने आपकी सुबहुल मोहन आकाङ्क्षा से एक ओर भय, दूसरी ओर लज्जा, इधर कुल तो उधर यश और श्री इत्यादि अखिल शृंखलाओं को तुम्हारे लिये ही नष्ट कर दिया है" । मेरी इस सगद्गद् वचनावली को सुनकर आप 'क्या-क्या' कह-कर हंसती हुई पूँछेंगी, ऐसा कब होगा ?

उपरोक्त भावानुसार ही　　　　११०　　　　शार्दूलविक्रीडितम्

श्यामेचाटुरुतानि कुर्वति सहालापान्प्रणेत्री मया,
गृह्णाने च दुकूल पल्लवमहो हुङ्कृत्य मां द्रक्ष्यसि ।
विभ्राणे भुजवल्लिमुल्लसितया रोमस्रजालङ्कृतां,
दृष्ट्वा त्वां रसलीन मूर्तिमथ किं पश्यामि हास्यं ततः ।।

हे प्रणयिनि ! श्याम-सुन्दर तो आपकी चाटुकारी कर रहे हों, किन्तु आप मुझसे वार्त्तालाप कर रही हों और जब श्याम-सुन्दर आपके दुकूल-पल्लव को पकड़ लें तब भी आप हुङ्कार-पूर्वक मेरी ओर ही (किञ्चित् रोष-युक्त) दृष्टि से देखें । जब प्रियतम् आपकी भुजलता को पकड़ लें, तब आप उल्लसित होकर रोमावली से अलङ्कृत हो उठें । क्या आपकी ऐसी रस-लीन मूर्ति को देखकर पश्चात् आपके हास्य को देखूंगी ?

अभिलाषा　　　　१११　　　　पृथ्वीवृत्तम्

अहो रसिक शेखरः स्फुरति कोपि वृन्दावने,
निकुञ्ज-नव-नागरी कुच-किशोर-केलि-प्रियः ।
करोतु स कृपां सखी प्रकट पूर्ण नत्युत्सवो,
निज प्रियतमा-पदे रसमये ददातु स्थितिम् ।।

अहो ! नव-निकुञ्ज में नव-नागरी के कुचों के साथ किशोर-केलि जिन्हें प्रिय है एवं जो सखियों के प्रति निःसंकोच एवं पूर्ण विनय में ही हर्ष प्राप्त करते हैं, वे कोई रसिक-शेखर श्रीवृन्दावन में स्फुरित हो रहे हैं । ये मुझ पर कृपा करें और अपनी प्रियतमा के रसमय पद-कमलों में मुझे अविचल स्थान दें ।

अभिलाषा　　　　११२　　　　पृथ्वीवृत्तम्

विचित्र वर भूषणोज्ज्वल-दुकूल-सत्कञ्चुकैः,
सखीभिरतिभूषिता तिलक-गन्ध-माल्यैरपि ।
स्वयं च सकला-कलासु कुशलो कृता नः कदा,
सुरास-मधुरोत्सवे किमपि वेशयेत्स्वामिनी ।।

जो सखि-गणों के द्वारा विचित्र एवं श्रेष्ठ आभूषण, उज्ज्वल दुकूल, उत्कृष्ट कञ्चुकि, तिलक और गन्ध माल्यादि से विभूषित की गई है, एवं जिन्होंने समस्त विद्याओं एवं कलाओं में स्वयं ही हमें सुशिक्षित किया है वे स्वामिनी श्रीराधा सुरास-मधुरोत्सव में हमें कब प्रवेश देंगी ?

रासोत्सव दर्शनाभिलाषा ११३ पृथ्वीवृत्तम्

कदा सुमणि किङ्किणी वलय नूपुर प्रोल्लसन्,
महामधुर मण्डलाद्भुत-विलास-रासोत्सवे ।
अपि प्रणयिनो वृहद्भुज गृहीत कण्ठयो वयं,
परं निज रसेश्वरी-चरण-लक्ष्म वीक्षामहे ॥

उत्कृष्ट मणिमय किङ्किणि, वलय, नूपुर-शोभित महा-मधुर मण्डल के अद्भुत विलास-रासोत्सव में प्रियतम श्रीलालजी के द्वारा गृहीत-कण्ठ होने पर भी हम कब केवल निज रसेश्वरी श्रीराधा के चरण-चिह्नों का ही दर्शन करेंगी ?

जीवन लक्ष्य ११४ शार्दूलविक्रीडितम्

यद्गोविन्द-कथा-सुधा-रस-ह्रदे चेतो मया जृम्भितम्,
यद्वा तद्गुण कीर्त्तनार्चन विभूषाद्यैर्दिनं प्रापितम् ।
यद्यत्प्रीतिरकारि तत्प्रिय-जनेष्वात्यन्तिकी तेन मे,
गोपेन्द्रात्मज-जीवन-प्रणयिनी श्रीराधिका तुष्यतु ॥

जो कुछ भी मैंने गोविन्द के कथा-सुधा-रस-सरोवर में अपने चित्त को डुबाया है अथवा उनके गुण-कीर्त्तन, चरणार्चन, विभूषणादि-विभूषित करने में दिन लगाये हैं किंवा उनके प्रिय-जनों के प्रति जिस-जिस आत्यं-तिकी प्रीति का विधान किया है [या मेरे द्वारा हुआ है,] उस सबके द्वारा (फल स्वरूप) गोपेन्द्र-नन्दन श्रीकृष्ण की जीवन-प्रणयिनी श्रीराधिका मुझ पर प्रसन्न हों ।

सर्वोपरि उपलब्धि ११५ शिखरिणीवृत्तम्

रहो दास्यं तस्या किमपि वृषभानोर्व्रजवरी–
यसः पुत्र्याः पूर्ण प्रणय-रस मूर्त्तेर्यदि लभे।
तदा नः किं धर्मैः किमु सुरगणैः किंच विधिना,
किमीशेन श्याम प्रियमिलन-यत्नैरपि च किम् ।।

यदि व्रज-वरीयान् वृषभानुराय की पूर्ण-प्रेम-रस-मूर्ति पुत्री (दुलारी) का हमें एकांत दास्य-लाभ हो जाय, तो फिर हमें धर्म से, देवता-गणों से, ब्रह्मा और शङ्कर से, और अरे ! श्याम-सुन्दर के प्रिय-मिलन-यत्न से भी क्या प्रयोजन है ?

आराधन आकाङ्क्षा ११६ शार्दूलविक्रीडितम्

चन्द्रास्ये हरिणाक्षि देवि सुनसे शोणाधरे सुस्मिते,
चिल्लक्ष्मी भुजवल्लि कम्बु रुचिर ग्रीवे गिरीन्द्र-स्तनि ।
भज्जन्मध्य वृहन्नितम्ब कदली खण्डोरु पादाम्बुजे,
प्रोन्मीलन्नख-चन्द्र-मण्डलि कदा राधे मयाराध्यसे ।।

हे चन्द्रवदनि ! हे मृग लोचनि ! हे देवि ! हे सुनासिके ! हे अरुण अधरे ! हे सुस्मिते ! हे सजीव शोभाशाली भुजवल्लि-युवते ! हे रुचिर शङ्खग्रीवे ! हे कनक-गिरि स्तन-मण्डले ! हे क्षीण-मध्ये ! हे पृथु नितम्बे ! हे कदली-खण्डोपम जानु-शालिनी ! हे चरण-कमलोद्भासित नख-चन्द्र-मण्डल-भूषिते ! हे श्रीराधे ! मैं आपकी आराधना कब करूँगी ?

निष्कपट वाञ्छा ११७ शार्दूलविक्रीडितम्

राधा-पाद-सरोजभक्तिमचलामुद्वीक्ष्य निष्कैतवां,
प्रीतः स्वं भजतोपि निर्भर महा प्रेम्णाधिकं सर्वशः ।
आलिङ्गत्यथ चुम्बति स्ववदनात्ताम्बूलमास्येर्पयेत्,
कण्ठे स्वां वनमालिकामपि मम न्यस्येत्कदा मोहनः ।।

श्रीराधा-चरण-कमलों में मेरी निष्कपट एवं अचला प्रीति (भक्ति) देखकर श्रीप्रियाजी के अद्वितीय भक्त (प्रेमी) श्रीमोहनलाल महाप्रेमाधिक्यपूरित निर्भर प्रीति-पूर्वक मेरा आलिङ्गन करके चुम्बन-दान करेंगे एवं अपना चर्वित-ताम्बूल मेरे मुख में देकर अपनी वनमाला भी मेरे कण्ठ में पहना देंगे। ऐसा कब होगा ?

अद्‌भुत रूप वर्णन ११८ शार्दूलविक्रीडितम्

लावण्यं परमाद्‌भुतं रति-कला-चातुर्य्यमत्यद्‌भुतं,
कान्तिः कापि महाद्‌भुता वरतनोर्लीलागतिश्चाद्‌भुता।
दृग्भङ्गी पुनरद्‌भुताद्‌भुततमा यस्याः स्मितं चाद्‌भुतं,
सा राधाद्‌भुत मूर्त्तिरद्‌भुत रसं दास्यं कदा दास्यति॥

जिनका लावण्य परमाद्‌भुत है, जिनकी रति-कला-चातुरी अति अद्‌भुत है, जिन श्रेष्ठ-वपु की कोई अवर्णनीय कान्ति भी महा अद्‌भुत है, एव जिनकी लीला-पूर्ण गति भी अति अद्‌भुत है। अहा ! जिनकी नेत्र-भङ्गिमा अद्‌भुत से भी अद्‌भुततम है और जिनकी मन्द मुस्कान भी अद्‌भुत हैं, वे अद्‌भुत-मूर्त्ति श्रीराधा अपना अद्‌भुत रस-स्वरूप-दास्य मुझे कब प्रदान करेंगी ?

श्रीमुख शोभा वर्णन स्मरण ११९ पृथ्वीवृत्तम्

भ्रमद्‌भृकुटि सुन्दरं स्फुरित चारु बिम्बाधरं,
गृहे मधुर हुङ्कृतं प्रणय-केलि-कोपाकुलम्।
महारसिक मौलिना सभय कौतुकं वीक्षितं,
स्मरामि तव राधिके रतिकला सुखं श्रीमुखम्॥

हे श्रीराधिके ! मैं आपके रति-कला-सुख-पूर्ण श्रीमुख का स्मरण करती हूँ। अहा ! जिसमें भृकुटियों का सुन्दर नर्त्तन हो रहा है, चारु बिम्बाधर कुछ-कुछ फड़क रहे हैं। प्रियतम श्याम-सुन्दर के द्वारा भुज-लता के पकड़े जाने से मधुर हुङ्कार-स्वर निकल रहा है एवं जिसे महा-रसिक-मौलि श्रीलालजी अत्यन्त भय एवं कौतुक-मय दृष्टि से देखते ही रहते हैं।

मनोबोध १२० शार्दूलविक्रीडितम्

उन्मीलन्मुकुटच्छटा परिलसद्दिक्चक्रवालं स्फुरत्-
केयूराङ्गदहार-कङ्कणघटा निर्धूत रत्नच्छवि ।
श्रोणी-मण्डल किङ्कणी कलरवं मञ्जीर-मञ्जुर्ध्वानिं,
श्रीमत्पादसरोरुहं भज मनो राधाभिधानं महः ॥

हे मेरे मन ! तू तो श्रीराधा नामक ज्योति का ही भजन कर ! जिनके देदीप्यमान् मुकुट की छटा से दिशा-मण्डल विलसित हो रहा है । जो केयूर, अङ्गद, हार और कङ्कणों की छटा से रत्नों की शोभा को परास्त कर रही है । जिसमें नितम्ब-मण्डल की किङ्किणियों का कलरव हो रहा है एवं चरण-कमलों के नूपुरों की मधुर ध्वनि शब्दित हो रही है ।

प्रार्थना १२१ शार्दूलविक्रीडितम्

श्यामा-मण्डल-मौलि-मण्डन-मणिः श्यामानुरागस्फुर-
द्रोमोद्भेद विभाविता कृतिरहो काश्मीर गौरच्छविः ।
सातीवोन्मद कामकेलि तरला मां पातु मन्दस्मिता,
मन्दार-द्रुम-कुंज-मन्दिर-गता गोविन्द-पट्टेश्वरी ॥

अहो ! जो समस्त नव-तरुणि-मौलि ललितादि सहचरियों की भी भूषण - मणि रूपा हैं, जिनकी आकृति श्यामानुराग - जन्य देदीप्यमान् रोमोद्गम से चिह्नित है, जिनकी गौर छबि केशर-तुल्य है एवं जो अतीव उन्मद काम-केलि से तरल (चञ्चल) हो रही हैं; वे कोई मन्दस्मिता, मन्दार-द्रुम-कुञ्ज-मन्दिर-स्थिता, गोविन्द-पट्टेश्वरी मेरी रक्षा करें ।

उपरोक्त भावानुसार ही १२२ पृथ्वीवृत्तम्

उपास्य चरणाम्बुजे व्रज-भृतां किशोरीगणै-
र्महद्भिरपि पूरुषैरपरिभाव्य भावोत्सवे ।
अगाध रस धामनि स्वपद-पद्म सेवा विधौ,
विधेहि मधुरोज्ज्वलामिव-कृतिं ममाधीश्वरि ॥

हे व्रज - श्रेष्ठ किशोरी - गणाराध्य चरणाम्बुजे ! हे नारदादि महत्पुरुषों से भी अचिन्त्य भावोत्सवे ! हे स्वामिनि ! आप अगाध रस-धाम अपने चरण-कमलों की सेवा-विधि में मेरे लिये मधुर एवं उज्ज्वल कर्त्तव्य का ही विधान कीजिये ।

श्रीअङ्ग-दर्शन अभिलाषा　　१२३　　शार्दूलविक्रीडितम्

आनम्राननचन्द्रमीरित दृगपाङ्गच्छटा मन्थरं,
किञ्चिद्दर्शिशिरोवगुण्ठनपटं लीला-विलासावधिम् ।
उन्नीयालक-मंजरी कररुहैरालक्ष्य सन्नागर-
स्याङ्गेङ्गं तव राधिके सचकितालोकं कदा लोकये ।।

हे श्रीराधिके ! क्या मैं कभी आपके लीला-विलास-अवधि सचकित अवलोकन का विलोकन करूँगी ? कब ? जब नागर-शिरोमणि श्रीलालजी के अङ्गों से आपके अङ्ग परस्पर आलिङ्गन-बद्ध होंगे, मैं अपने नखों से आपकी अलक-मञ्जरी को ऊपर उठाकर देखूँगी कि आप अपने आनम्र मुख-चन्द्र से कटाक्षों की छटा का प्रसरण कर रही हैं—वक्र अवलोकन कर रही हैं; और उस छटा का दर्शन शिरोवगुण्ठन-पट से किञ्चित्-किञ्चित् ही हो रहा होगा ।

अनुपम सौन्दर्य वर्णन　　१२४　　स्रग्धरावृत्तम्

राकाचन्द्रो वराको यदनुपम रसानन्द कन्दाननेन्दो-
स्तत्ताटक चंद्रिकाया अपि किमपि कलामात्र कस्याणुतोपि ।
यस्याः शोणाधर श्रीविधृत नव-सुधा-माधुरी-सार-सिन्धुः,
सा राधा काम-बाधा विधुर मधुपति-प्राणदा प्रीयतां नः ।।

जिनके अनुपम रसानन्द-कन्द मुख-चन्द्र की चन्द्रिका की कला के अणु से भी पूर्णिमा का चन्द्रमा तुच्छ है और जिनके गुलाबी अधरों ने सौन्दर्य-श्री की नव-सुधा-माधुरी के सार-रूप सिन्धु को धारण कर रखा है, वे काम-बाधा-दुखित (विधुर) मधुपति श्रीलालजी की जीवन-दायिनि श्रीराधा हम पर प्रसन्न हों ।

अभूतोपमा वर्णन १२५ शार्दूलविक्रीडितम्

राकानेक विचित्र चन्द्र उदितः प्रेमामृत-ज्योतिषां,
वीचीभिः परिपूरयेदगणित ब्रह्माण्ड कोटिं यदि ।
वृन्दारण्य-निकुञ्ज-सीमनि तदाभासः परं लक्ष्यसे*,
भावेनैव यदा तदैव तुलये राधे तव श्रीमुखम् ।।

यदि अनेक-अनेक विचित्र राका-शशि उदित होकर अपनी प्रेमामृत-ज्योतिर्मयी तरङ्गों से अगणित कोटि ब्रह्माण्डों को आपूरित कर दें; तत्पश्चात् श्रीवृन्दावन की निकुञ्ज-सीमा में (स्थित) आप उसके आभास को भाव-पूर्ण दृष्टि से देखें, तभी हे श्रीराधे ! मैं उस चन्द्र के साथ आपके श्रीमुख की तुलना किसी प्रकार कर सकती हूँ ।

विभव-वर्णन १२६ स्रग्धरावृत्तम्

कालिन्दी-कूल-कल्प-द्रुम-तल निलय प्रोल्लसत्केलिकन्दा,
वृन्दाटव्यां सदैव प्रकटतररहो वल्लवी भाव भव्या ।
भक्तानां हृत्सरोजे मधुर रस-सुधा-स्यन्दि-पादारविन्दा,
सान्द्रानन्दाकृतिर्नः स्फुरतु नव-नव-प्रेमलक्ष्मीरमन्दा ।।

जो कालिन्दी-कूल-वर्त्ती कल्पद्रुम-तल-स्थित भवन में उल्लसित केलि-विलास की मूल स्वरूपा हैं, जो श्रीवृन्दावन में सदा-सर्वदा प्रकटतर रूप से विराजमान्, एकान्त सहचरी ललितादिकों के भावों से भव्य (सुन्दर) हैं अर्थात् परम सुन्दरी हैं एवं जो भक्तों के हृदय-कमल में अपने चरणारविन्दों का स्थापन करके मधुर-रस-सुधा का निर्झरण करती हैं; वे घनीभूत आनन्द-मूर्ति नित्य अभिनव-पूर्ण प्रेमलक्ष्मी (श्रीराधा) मेरे हृदय में स्फुरित हों ।

सेवा याचना १२७ स्रग्धरावृत्तम्

शुद्ध प्रेमैकलीलानिधिरहह महातङ्कमङ्कस्थिते च,
प्रेष्ठे विभ्रत्पदभ्रस्फुरदतुल कृपा स्नेह माधुर्य्य मूर्त्तिः ।
प्राणाली कोटि नीराजित पद सुषमा माधुरी माधवेन,
श्रीराधा मामगाधामृतरस भरिते कर्हि दास्येभिषिञ्चेत् ।।

* पाठान्तर—लक्ष्यते ।

जो पवित्र-प्रेम-लीला की एक मात्र उत्पत्ति स्थान हैं; कैसा आश्चर्य्य है कि अपने प्रियतम की गोद में रहते हुए भी जो (विच्छेद) भय को धारण किये हुए हैं तथा जिनकी चरण-सुषमा-माधुरी का नीराजन माधव श्रीकृष्ण ने अपनी कोटि-कोटि प्राण-पंक्तियों से किया है; वे अत्यधिक देदीप्यमान् अतुल कृपा-स्नेह-माधुर्य्य-मूर्ति श्रीराधा क्या कभी अपने अगाध अमृत-भरित दास्य-रस से मुझे अभिषिञ्चित करेंगी ?

उपरोक्त भावानुसार ही **१२८** **शार्दूलविक्रीडितम्**

वृन्दारण्य निकुञ्जसीमसु सदा स्वानङ्ग रङ्गोत्सवै-
र्माद्यत्यद्भुत माधवाधर-सुधा माध्वीक संस्वादनैः ।
गोविन्द-प्रिय-वर्ग-दुर्गम सखी-वृन्दैरनालक्षिता,
दास्यं दास्यति मे कदा नु कृपया वृन्दावनाधीश्वरी ॥

जो सर्वदा श्रीवृन्दावन निकुञ्ज-सीमा में अपने अनङ्ग-रङ्गोत्सव के द्वारा माधव की अत्यद्भुत अधर-सुधा का आस्वादन करके उन्मत्त हो रही हैं तथा जो गोविन्द के प्रियजनों को भी दुर्गम, सखी-समुदाय के लिये अलक्षित हैं, वे श्रीवृन्दावनाधीश्वरी कभी मुझे कृपा-पूर्वक अपना दास्य प्रदान करेंगी ?

जीवन साफल्य **१२९** **शार्दूलविक्रीडितम्**

मल्लीदाम निबद्ध चारु कबरं सिन्दूर रेखोल्लस-
त्सीमन्तं नवरत्न चित्र तिलकं गण्डोल्लसत्कुण्डलम् ।
निष्कग्रीवमुदार हारमरुणं बिभ्रद्दुकूलं नवं,
विद्युत्कोटिनिभं स्मरोत्सवमयं राधाख्यमीक्षेमहः ॥

जिसकी सुन्दर कबरी नवीन-मल्लिका-दाम से निबद्ध है। सीमन्त सिन्दूर-रेखा से शोभित है। (विशाल भाल) नव-रत्नों के द्वारा विचित्र तिलक से युक्त है । गण्ड-मण्डल कुण्डलों से उल्लसित हैं । ग्रीवा में हेम-जटित पदिक है और उदार हार (हृदय देश में) शोभित हो रहा है। जिसने अरुण-वर्ण का नव-दुकूल धारण कर रखा है, और कोटि दामिनियों के समान जिसकी प्रभा है; ऐसे नित्य स्मर-उत्सवमय श्रीराधा नामक तेज का मैं दर्शन करती हूँ।

श्रीराधासर्वोपरिता १३० स्रग्धरावृत्तम्

प्रेमोल्लासैकसीमा परम रसचमत्कार वैचित्र्य सीमा,
सौन्दर्य्यस्यैक-सीमा किमपि नव-वयो-रूप-लावण्य सीमा ।
लीला-माधुर्य्य सीमा निजजन परमोदार वात्सल्य सीमा,
सा राधा सौख्य-सीमा जयति रतिकला-केलि-माधुर्य्य-सीमा ॥

प्रेमोल्लास की चरम सीमा, परम रस (प्रेम) चमत्कार विचित्रता की सीमा, सौन्दर्य्य की अंतिम सीमा, अनिर्वचनीय नवीन वय, रूप एवं लावण्य की सीमा; निजजनों के प्रति परम उदारता एवं वात्सल्यता की सीमा, लीला-माधुर्य्य की सीमा, रति-कला-केलि-माधुरी की सीमा एवं सुख की परम सीमा श्रीराधा ही सर्वोत्कृष्टता को प्राप्त हैं ।

अनन्यगति १३१ शार्दूलविक्रीडितम्

यस्यास्तत्सुकुमार सुन्दर पदोन्मीलन्नखेन्दुच्छटा,
लावण्यैक लवोपजीवि सकल श्यामा मणी मण्डलम् ।
शुद्ध प्रेम-विलास मूर्तिरधिकोन्मीलन्महा माधुरी,
धारा-सार-धुरीण-केलि-विभवा सा राधिका मे गतिः ॥

जिनके उन सुकुमार एवं सुन्दर चरणों के प्रफुल्लित नखेन्दु की छटा के लावण्य का लव-मात्र ही समस्त श्यामा-रमणी मणियों के पूर्ण मण्डल का जीवन है । जो शुद्ध प्रेम-विलास की मूर्ति हैं एवं जो अधिकाधिक रूप में उन्मीलित महा माधुरी-धारा के सम्पतन को धारण करने में समर्थ हैं; वे केलि-विभव स्वरूपा श्रीराधिका ही मेरी गति हैं ।

केलि-विभव दर्शन १३२ पृथ्वीवृत्तम्

कलिन्द-गिरि-नन्दिनी सलिल-विन्दु सन्दोहभृन्,
मृदूद्गति रतिश्रमं मिथुनमद्भुत क्रीडया ।
अमंद रस तुन्दिल भ्रमर-वृन्द वृन्दाटवी,
निकुञ्ज वर-मन्दिरे किमपि सुन्दरं नन्दति ॥

श्रीकलिन्दगिरि-नन्दिनी यमुना के जल-सीकरों को धारण किये हुए एवं मृदुगतिशील वृद्धि-प्राप्त रतिश्रम से युक्त, कोई अनिर्वचनीय नागरी-नागर (युगल) अमन्द रस से जड़ीभूत हो रहे हैं और भ्रमर-समूहाकीर्ण वृन्दावनस्थ वर निकुञ्ज-मंदिर में अद्भुत क्रीड़ा द्वारा आनन्दित हो रहे हैं।

पुनः उक्त भावानुसार ही   १३३   मन्दाक्रान्तावृत्तम्

व्याकोशेन्दीवर विकसिता मन्द हेमारविन्द,
श्रीमन्निस्यंदन रतिरसांदोलि कन्दर्प-केलि।
वृन्दारण्ये नव रस-सुधास्यन्दि पादारविन्दं,
ज्योतिर्द्वन्द्वं किमपि परमानन्द कन्दं चकास्ति॥

जो प्रफुल्लित नील-कमल और पूर्ण विकसित स्वर्ण-कमल की शोभा से युक्त है; जो स्रवित रतिरस की आन्दोलन-शील काम-केलि से समन्वित है; जिसके चरण-कमल, नव रस-सुधा को प्रवाहित करते रहते हैं एवं जो अनिर्वचनीय परमानन्द की उत्पत्ति-स्थान है, ऐसी कोई अनिर्वचनीय युगल-ज्योति श्रीवृन्दावन में चमत्कृत हो रही है।

सेवा-प्राप्ति की अभिलाषा   १३४   शार्दूलविक्रीडितम्

ताम्बूलं क्वचदर्पयामिचरणौ संवाहयामि क्वचि-
न्मालाद्यैः परिमण्डये क्वचिदहो संवीजयामि क्वचित्।
कर्पूरादि सुवासितं क्वच पुनः सुस्वादु चाम्भोमृतं,
पायाम्येव गृहे कदा खलु भजे श्रीराधिका-माधवौ॥

अहा ! कभी ताम्बूल-बीटिका अर्पित करूंगी, कभी चरणों का संवाहन करूँगी, कभी माला, आभूषणादि से उन्हें आभूषित करूंगी, तो कभी व्यजन ही डुलाऊंगी और कभी कर्पूरादि-सुवासित सुस्वाद अमृतोपम जल-पान भी कराऊंगी। इस प्रकार निकुञ्ज-भवन में कब निश्चय रूप से मैं श्रीराधा-माधव युगल-किशोर की सेवा करूंगी ?

प्रिया स्वरूप प्रकाश १३५ शार्दूलविक्रीडितम्

प्रत्यङ्गोच्छलदुज्ज्वलामृत - रस - प्रेमैक - पूर्णाम्बुधि -
र्लावण्यैक सुधानिधिः पुरु कृपा वात्सल्य साराम्बुधिः ।
तारुण्य-प्रथम-प्रवेश विलसन्माधुर्य्य साम्राज्य भू-
र्गुप्तः कोपि महानिधिर्विजयते राधा रसैकावधिः ।।

प्रेम का एक अनुपम परिपूर्णतम सागर है। जिसके अङ्ग-प्रत्यङ्गों से नित्य-प्रति उज्ज्वल अमृत-रस उच्छलित होता रहता है। वह (प्रेम-महानिधि) लावण्य का भी अनुपम समुद्र है और अत्यधिक कृपामय वात्सल्य-सार का भी अम्बुधि है वह तारुण्य के प्रथम-प्रवेश से विलसित माधुर्य्य-साम्राज्य की भूमि है, और रस की एकमात्र सीमा है। वही 'राधा' नामक कोई परम-गुप्त महानिधि सर्वोत्कर्ष-पूर्वक विराजमान् है।

श्रीराधा कृपा-कटाक्ष की श्रेष्ठता १३६ मन्दाक्रान्तावृत्तम्

यस्याः स्फूर्जत्पदनखमणि ज्योतिरेकच्छटायाः
सान्द्र प्रेमामृतरस महासिन्धु कोटिर्विलासः ।
सा चेद्राधा रचयति कृपा दृष्टिपातं कदाचिन्,
मुक्तिस्तुच्छी भवति बहुशः प्राकृता प्राकृतश्रीः ।।

जिनकी प्रकाशमान् पद-नख-मणि-ज्योति की एक छटा का विलास सघन प्रेमामृत-रस के कोटि-कोटि सिन्धुओं के समान है; वे श्रीराधा यदि कदाचित् कृपा-दृष्टि-पात कर दें तो अनेक प्राकृत-अप्राकृत शोभायें और मुक्ति भी मेरे लिये तुच्छ हो जायें।

अभिलाषा १३७ शिखरिणीवृत्तम्

कदा वृन्दारण्ये मधुर मधुरानन्द रसदे,
प्रियेश्वर्य्याः केलीभवन नव कुञ्जानि मृगये ।
कदा श्रीराधायाः पद-कमल माध्वीक लहरी,
परीवाहैश्चेतो मधुकरमधीरं मदयिता ।।

मैं मधुर से भी मधुर आनन्द-रस-प्रद श्रीवृन्दावन में प्रियेश्वरी श्रीराधा के केलि-भवन नव-कुञ्ज-पुञ्जों का कब अन्वेषण करूँगी ? और श्रीराधा-पद-कमल-मकरन्द-लहरी के अनवरत वर्षण से मेरा मन-मधुकर कब अधीर और मद-मत्त हो जायगा ?

श्रीराधा-परिचर्य्या की अभिलाषा १३८ शार्दूलविक्रीडितम्

राधाकेलि-निकुञ्ज-वीथीषु चरन्राधाभिधामुच्चरन्-
राराधा अनुरूपमेवपरमं धर्म्मं रसेनाचरन् ।
राधायाश्चरणाम्बुजं परिचरन्नानोपचारैर्मुदा,
कर्हि स्यां श्रुति शेखरोपरिचरन्नाश्चर्य्यचर्याचरन् ॥

श्रीराधा-केलि-निकुञ्ज-वीथियों में विचरण करते हुए, श्रीराधा-नाम का उच्चारण करते हुए, श्रीराधा के अनुरूप अपने परम धर्म (अपने किङ्करी-स्वरूप) का रस-पूर्वक आचरण करते हुए श्रीराधा-चरणाम्बुजों की विविध उपचारों के द्वारा मोद - पूर्वक परिचर्य्या करते हुए, एव आश्चर्य्य-रूप उपरोक्त चर्य्या का आचरण करती हुई मैं कब वेदातीत (वेदोपरि) आचरण करने के योग्य हो जाऊंगी ?

नूपुर-ध्वनि श्रवण अभिलाषा १३९ शार्दूलविक्रीडितम्

यातायातशतेन सङ्गमितयोरन्योन्यवक्रोल्लस-
च्चन्द्रालोकन सम्प्रभूत बहुलानङ्गाम्बुधिक्षोभयोः ।
अन्तः कुञ्ज-कुटीर तल्पगतयोर्दिव्याद्भुत क्रीडयो,
राधा-माधवयोः कदा नु शृणुयां मंजीर कांचीध्वनिम् ॥

(श्रीराधा - माधव युगल - किशोर अपने किसी अत्यन्त गुप्त अनिर्वचनीय सङ्गम-विहार में संलग्न हैं ।) पारस्परिक वक्र नेत्र-क्षेपण रूप चन्द्र-दर्शन से दोनों ओर विस्तीर्ण अनङ्गाम्बुधि प्रकट हो रहे हैं । अहा ! और वे दोनों किसी परम एकान्त कुञ्ज-कुटीर-गत दिव्य तल्प पर विराजमान् होकर किसी दिव्य एवं अद्भुत क्रीड़ा में रत हैं । जिससे श्रीराधा के चरण-मञ्जीर एवं माधव की कटि-किङ्किणि की सम्मिलित रूप से बड़ी ही मधुर ध्वनि यातायात (विहार) के कारण हो रही है । मैं उसे कब सुनूँगी ?

अभिलाषा १४० पृथ्वीवृत्तम्

अहो भुवन - मोहनं मधुर माधवी - मण्डपे,
मधूत्सव - समुत्सुकं किमपि नील - पीतच्छविः ।
विदग्ध मिथुनं मिथो दृढ़तरानुरागोल्लसन्,
मदं मदयते कदा चिरतरं मदीयं मनः ।।

अनिर्वचनीय मधूत्सव-समुत्सुक, पारस्परिक दृढ़तर अनुराग के उल्लास से उन्मद हुए अनुपम नील-पीत-छविमान् भुवन-मोहन विदग्ध-युगल मेरे मन को कब सर्वदा मद-युक्त कर देंगे ?

अभिलाषा १४१ शार्दूलविक्रीडितम्

राधानाम सुधारसं रसयितुं जिह्वास्तु मे विह्वला,
पादौ तत्पदकाङ्कितासुचरतां वृन्दाटवी-वीथिषु ।
तत्कर्मैव करः करोतु हृदयं तस्याः पदं ध्यायता-
त्तद्भावोत्सवतः परं भवतु मे तत्प्राणनाथे रतिः ।।

मेरी जिह्वा श्रीराधा-नामामृत-रस के आस्वादनार्थ सदा विह्वल (लालचवती) रही आवे । चरण श्रीराधा-पादाङ्कित वृन्दावन-वीथियों में ही विचरण करते रहें । दोनों हाथ उनके सेवा कार्यों में ही लगे रहें । हृदय सदा उनके मञ्जुल चरण-कमलों का ही ध्यान करता रहे एवं उन्हीं श्रीराधा के रस-भावोत्सव-सहित श्रीराधा-प्राणनाथ लालजी में मेरी परम प्रीति हो ।

रस सर्वोपरिता १४२ शार्दूलविक्रीडितम्

मन्दीकृत्य मुकुन्द सुन्दर पदद्वन्द्वारविन्दामल,
प्रेमानन्दममन्दमिन्दु—तिलकाद्युन्माद कन्दं परम् ।
राधा-केलि-कथा-रसाम्बुधि चलद्वीचीभिरान्दोलितं,
वृन्दारण्य निकुञ्ज मन्दिर वरालिन्दे मनो नन्दतु ।।

श्रीमुकुन्द के युगल सुन्दर पदारविन्द का अमल अमन्द प्रेमानन्द चन्द्र-चूड़ शिवजी आदि के लिये भी परम उन्मादक मूल है, किन्तु मेरा मन उसको भी शिथिल करके श्रीराधा-केलि - कथा-रस-समुद्र की चञ्चल लहरियों से आन्दोलित वृन्दावनस्थ निकुंज-मन्दिर के श्रेष्ठ-प्राङ्गण में आनन्द को प्राप्त हो ।

इष्ट परत्व १४३ स्रग्धरावृत्तम्

राधानामैव कार्यं ह्यनुदिन मिलितं साधनाधीश कोटि-
स्त्याज्यो नीराज्य राधापद-कमल-सुधा सत्पुमर्थाग्र कोटिः ।
राधा पादाब्ज लीला-भुवि जयति सदा मन्द मन्दार कोटिः,
श्रीराधा-किङ्करीणां लुठति चरणयोरद्भुता सिद्धि कोटिः ॥

अनुदिन श्रीराधा-नाम के श्रवण-कीर्त्तनादि के प्राप्त होने पर कोटि-कोटि श्रेष्ठ साधन भी परित्याज्य हो जाते हैं । श्रीराधा-पद-कमल-सुधा पर कोटि-कोटि मोक्षादि पुरुषार्थ न्यौछावर हैं । [तभी तो] श्रीराधा-पादाब्ज-लीला-भूमि श्रीवृन्दावन में अमन्द (वैभव-शाली) कोटि-कोटि कल्पतरु सदा विद्यमान् रहते हैं और श्रीराधा-किङ्करी-गणों के चरणों में अद्भुत कोटि-कोटि सिद्धियाँ लोटती रहती हैं ।

युगल नवकिशोर की सर्वोत्कृष्टता १४४ शिखरिणीवृत्तम्

मिथो भङ्गी कोटि प्रवहदनुरागामृत - रसो-
तरङ्ग भ्रूभङ्ग क्षुभित बहिरभ्यंतरमहो ।
मदाघूर्णन्नेत्रं रचयति विचित्रं रतिकला,
विलासं तत्कुञ्जे जयति नव-कैशोर-मिथुनम् ॥

परस्पर में हाव-भाव-समूह के विस्तार से अनुरागामृत रस बह चला है । जिससे युगल किशोर भीतर और बाहर भी प्रेम क्षुब्ध हो रहे हैं । जिसमें भ्रूनर्त्तन ही तरङ्ग हैं । इस रस से युगल के नेत्र मद-घूर्णित हो रहे हैं; वे नव-किशोर मिथुन निकुञ्ज-भवन के मध्य में रति-विलास-कला की रचना करके सर्वोत्कृष्टता को प्राप्त हो रहे हैं ।

श्रीप्रिया-स्वरूप वर्णन १४५ मन्दाक्रान्तावृत्तम्

काचिद्वृन्दावन नवलता-मन्दिरे नन्दसूनो-
र्दृप्यद्दोष्कन्दल दृढ परीरम्भ निस्पन्द गात्री ।
दिव्यानन्ताद्भुत रसकलाः कल्पयन्त्याविरास्ते,
सान्द्रानन्दामृत रस - घन प्रेम - मूर्त्तिः किशोरी ।।

नन्द-नन्दन श्रीलालजी की दर्प-युक्त बाहु-लताओं के गाढ़ आलिङ्गन से जिनके समस्त अङ्ग शिथिल हो रहे हैं तथा जो अद्भुत एवं अनन्त रस-कलाओं का विस्तार करती हैं । वे घनीभूत आनन्दामृत-रस एवं प्रेम-घन-मूर्त्ति (अनिर्वचनीय) कोई किशोरी श्रीवृन्दावन के नव-लता-मंदिर में नित्य विराजमान् हैं ।

रसिक स्वरूप वर्णन १४६. शिखरिणीवृत्तम्

न जानीते लोकं न च निगमजातं कुल-परं-
परां वा नो जानत्यहह न सतां चापि चरितम् ।
रसं राधायामाभजति किल भावं व्रजमणौ,
रहस्ये तद्यस्य स्थितिरपि न साधारण गतिः ।।

जो महानुभाव इस एकान्त देश में ब्रज-मणि श्रीकृष्ण और श्रीराधा के भाव और रस का निश्चय रूप से भजन करते हैं; अहो ! वे न तो लोक को जानना चाहते हैं, न निगम समूह को; न कुल परम्परा को जानने की इच्छा रखते हैं और न साधु-आचरण को ही । ऐसे रसिकों की स्थिति साधारण नहीं वरन् असाधारण है ।

श्रीराधा-किंकरी-भाव की श्रेष्ठता १४७ स्रग्धरावृत्तम्

ब्रह्मानन्दैकवादाः कतिचन् भगवद्वन्दनानन्द-मत्ताः,
केचिद्गोविन्द-सख्याद्यनुपम परमानन्द मन्ये स्वदन्ते ।
श्रीराधा-किङ्करीणां त्वखिल सुख-चमत्कार-सारैक-सीमा,
तत्पादाम्भोज राजन्नख - मणिविलसज्ज्योतिरेकच्छटापि ।।

कोई ब्रह्मानन्द वादी हैं, तो कोई भगवद्वन्दना (दास्य-भाव) में ही उन्मत्त हैं। कुछ लोग गोविन्द के सख्यादि (मैत्री-भाव) को ही परमानन्द मानकर उसके आस्वादन में लग रहे हैं किन्तु श्रीराधा-चरण-कमलों की शोभायमान् नख-मणि ज्योति की एक किरण मात्र ही श्रीराधा-किङ्करियों के लिये अखिल सुख-चमत्कार-सार की सीमा है।

श्रीराधा-भाव की सर्व-श्रेष्ठता   १४८   शिखरिणीवृत्तम्

> **न देवैर्ब्रह्माद्यैर्न खलु हरिभक्तैर्न सुहृदा-**
> **दिभिर्यद्वै राधा - मधुपति - रहस्यं सुविदितम् ।**
> **तयोर्दासीभूत्वा तदुपचित केली-रस-मये,**
> **दुरन्ताः प्रत्याशा हर-हर दृशोर्गोचरयितुम् ॥**

श्रीराधा-मधुसूदन का रहस्य न तो ब्रह्मादि देवताओं को ही विदित है न हरि-भक्तों को ही। और तो और श्यामसुन्दर के सखा आदिकों को भी वह सुविदित नहीं है किन्तु हरि ! हरि !! मैंने उनको दासी होकर [युगल की] सम्बर्द्धमान् केलि को असमय में भी अपने नेत्रों से देखने की दुर्गम आशा कर रखी है !

युगल-किशोर का वार्त्तालाप   १४९   शिखरिणीवृत्तम्

> **त्वयि श्यामे नित्ये प्रणयिनि विदग्धे रसनिधौ,**
> **प्रिये भूयोभूयः सुदृढमति रागो भवतु मे ।**
> **इति प्रेष्ठेनोक्ता रमण मम चित्ते तव वचो,**
> **वदन्तीति स्मेरा मम मनसि राधा विलसतु ॥**

प्रियतम ने कहा—"हे श्यामे ! हे नित्य प्रणयिनी ! हे विदग्धे ! हे प्रिये ! आप रस-निधि में बारम्बार मेरा सुदृढ़ अनुराग हो" । इस प्रकार प्रिययम श्रीकृष्ण के द्वारा कहे जाने पर "हे रमण ! मेरे हृदय में आपके (यही) वचन हैं" यह कहती हुई मन्द हास-युक्ता श्रीराधा मेरे हृदय में सदा-सर्वदा विलास करें।

प्रार्थना १५० शिखरिणीवृत्तम्

सदानन्दं वृन्दावन-नवलता-मन्दिर वरे-
ष्वमन्दैः कन्दर्पोन्मदरति-कला-कौतुक रसम् ।
किशोरं तज्ज्योतिर्युगलमतिघोरं मम भव,
ज्वलज्ज्वालं शीतैः स्वपद-मकरन्दैः शमयतु ॥

श्रीवृन्दावन के नवलता-वर मन्दिर में तीव्र कामोन्मद-रति-केलि-कला-कौतुक-रस स्वरूप एवं सदा आनन्द-मय किशोराकृति वह युगल-ज्योति अपने चरण-कमलों के शीतल मकरन्द से मेरे अति-घोर ज्वलित-ज्वाल-भव (संसार) को शान्त करे।

अभिलाषा १५१ शार्दूलविक्रीडितम्

उन्मीलन्नव मल्लिदाम विलसद्धम्मिल्लभारे बृह-
च्छ्रोणी मण्डल मेखला कलरवे शिञ्जान[1] मंजीरिणी ।
केयूराङ्गद कङ्कणावलिलसद्दोर्वल्लि दीप्तिच्छटे,
हेमाम्भोरुह कुड्मलस्तनि कदा राधे दृशा पीयसे ॥

हे प्रफुल्लित नव मल्ली-माल-शोभामाना-कबरि-भारे ! हे पृथु-नितम्ब-मण्डल-मेखला-कलरवे ! हे शब्दायमान् नूपुर-धारिणि ! हे केयूर अङ्गद कङ्कणावलि-विलसित भुजलता-दीप्तिच्छटे । हे स्वर्ण-कमल-कलिका-स्तनि ! हे श्रीराधे ! मैं आपके इस रूप-रस को कब अपने नेत्रों से पान करूंगी ?

उपरोक्त भावानुसार ही १५२ शिखरिणीवृत्तम्

अमर्यादोन्मीलत्सुरत रस पीयूष जलधेः,
सुधाङ्गैरुत्तुङ्गैरिव किमपि दोलायित तनुः ।
स्फुरन्ती प्रेयोङ्के स्फुट कनक - पङ्केरुह मुखी,
सखीनां नो राधे नयनसुखमाधास्यसि कदा ॥

---

१ पाठान्तर—शिञ्जत्सु ।

प्रफुल्ल कनक-कमल-मुखी हे श्रीराधे ! मर्यादा का अतिक्रमण करके सुरत-रस का जो सुधा-समुद्र उद्भूत हुआ है, उसके अत्युच्च सुधा-स्वरूप अङ्गों के द्वारा आपका श्रीवपु अनिर्वचनीय रूप-यौवन से आन्दोलित सा हो रहा है । आप प्रियतम के अङ्क में चञ्चल हो रही हैं, हे स्वामिनि ! आप हम सखियों के नेत्र-सुख का विधान कब करोगी ?

सम्भाषण अभिलाषा १५३ शिखरिणीवृत्तम्

क्षरन्तीव प्रत्यक्षरमनुपम प्रेम - जलधिं,
सुधाधारा वृष्टीरिव विदधती श्रोत्रपुटयोः ।
रसार्द्रा सन्मृद्वी परम सुखदा शीतलतरा,
भवित्री किं राधे तव सह मया कापि सुकथा ॥

अहा ! जिसके अक्षर-अक्षर से अनुपम प्रेम-जलधि निर्झरित हो रहा है । जो कर्ण-पुटों में मानों अमृत-धारा-वृष्टि विधान करता है, एवं जो रस से सिक्त, परम कोमल, परम सुखद तथा परम शीतल है । हे श्रीराधे ! मेरे साथ कभी आपका वह रसमय सम्भाषण होगा जो सब प्रकार से अनिर्वचनीय है ?

श्रीराधा-नाम महिमा १५४ शिखरिणीवृत्तम्

अनुल्लिख्यानन्तानपि सदपराधान्मधुपति-
र्महाप्रेमाविष्टस्तव परमदेयं विमृशति ।
तवैकं श्रीराधे गृणत इह नामामृत रसं,
महिम्नः कः सीमां स्पृशति तव दास्यैकमनसाम् ॥

हे श्रीराधे ! जो कोई आपके 'श्रीराधा' इस एक ही अमृत-रूप नाम का गान अथवा स्मरण कर लेता है उसके अनन्त-अनन्त महत् अपराधों की आपके महाप्रेमाविष्ट प्रियतम मधुपति गणना न करके यह विचारने लगते हैं कि इसको (इस नामोच्चार के बदले में) क्या देना चाहिये ? अतएव जिन्होंने अपने मन में आपका एक-मात्र दास्य ही स्वीकार कर रखा है; उनकी महिमा-सीमा का स्पर्श कौन कर सकता है ?

अभिलाषा १५५ मालतीवृत्तम्

लुलित नव लवङ्गोदार कर्पूरपूरं-
प्रियतम-मुख-चन्द्रोद्‌गीर्ण ताम्बूल-खण्डम् ।
घनपुलक कपोला स्वादयन्ती मदास्ये-
र्पयतु किमपि दासी-वत्सला कर्हि राधा ।।

कपूर की शीतलता के कारण जिनके कपोलों पर पुलक का उदय हो रहा है और जो अनिर्वचनीय रूप से दासी-वत्सला हैं । ऐसी श्रीराधा प्रियतम श्रीकृष्ण के मुख-चन्द्र द्वारा चर्वित, नव-लवङ्ग-चूर्ण एवं प्रचुर कर्पूर-समन्वित ताम्बूल-खण्ड का आस्वादन करते-करते कब उस चर्वित ताम्बूल को। मेरे मुख में अर्पण करेंगी ?

दास्याभिलाषा १५६ शार्दूलविक्रीडितम्

सौन्दर्य्यामृत-राशिरद्‌भुत महालावण्य-लीला-कला,
कालिन्दीवर-वीचि-डम्बर परिस्फूर्जत्कटाक्षच्छवि ।
सा कापि स्मरकेलि-कोमल-कला-वैचित्र्य-कोटि स्फुर-
त्प्रेमानन्द घनाकृतिर्दिशतु मे दास्यं किशोरी-मणिः ।

काम-केलि-कोमल-कलाओं की कोटि-कोटि विचित्रताओं का विकास करने वाली, प्रेमानन्द-घन-मूर्त्ति एवं सौन्दर्य्यामृत-राशि कोई अवर्णनीय किशोरी-मणि हैं । जिनकी नेत्र-कटाक्षच्छवि कालिन्दी के मनोहर वीचि-विलास की विशाल छवि की अपेक्षा अधिक चमत्कृत है । और अन्यान्य अद्‌भुत एवं महानतम् लावण्य-लीलाएँ भी जिनकी एक कला—अंश मात्र हैं, [अथवा जो लीलाओं की निधान हैं ।] वे दिव्य किशोरी-मणि मुझे अपना दास्याधिकार प्रदान कर दासी-रूप से स्वीकार करें ।

अभिलाषा १५७ पृथ्वीवृत्तम्

दुकूलमति कोमलं कलयदेव कौसुम्भकं,
निबद्ध मधु-मल्लिका ललित माल्य-धम्मिल्लकम् ।
बृहत्कटितट स्फुरन्मुखर मेखलालंकृतं,
कदा नु कलयामि तत्कनक-चम्पकाभं महः ।।

जिसने कसूंभे रँग का अत्यन्त कोमल दुकूल धारण किया है, जिसकी कबरी बासन्ती-मल्लिका की ललित मालावली से निबद्ध है एवं जिसके विशाल कटि-तट (नितम्ब भाग) में देदीप्यमान् एवं मुखरित मेखला अलंकृत हो रही है। उस कनक-चम्पकमयी ज्योति को मैं कब देखूंगी ?

अभिलाषा १५८ शिखरिणीवृत्तम्

कदा रासे प्रेमोन्मद रस-विलासेद्भुतमये,
दिशोर्मध्ये भ्राजन्मधुपति सखी-वृन्द-वलये।
मुदान्तः कान्तेन स्वरचित महालास्य-कलया,
निषेवे नृत्यन्ती व्यजन नव ताम्बूल - सकलैः ॥

प्रेमोन्मद रस-विलास पूरित अत्यन्त अद्भुत रास; जिसमें मधुपति श्रीलालजी के चारों ओर सखियाँ ऐसी शोभित हो रही हैं जैसे कङ्कण। इस रास में वे अपने प्रफुल्लित-चित्त कान्त-श्रीलालजी के साथ स्वरचित लास्य-कला-पूर्वक नृत्य कर रही हैं। मैं कब व्यजन एवं नव-ताम्बूल, शकल (सुपारी) आदि से उनकी सेवा करूंगी ?

रास वर्णन १५९ मालतीवृत्तम्

प्रसृमर पटवासे प्रेम-सीमा-विकासे,
मधुर-मधुर हासे दिव्य भूषा-विलासे।
पुलकित दयितांसे सम्बलद्बाहु-पाशे,
तदतिललित रासे कर्हि राधामुपासे ॥

जिस रास में विस्तार-प्राप्त-पटवास, प्रेम-सीमा का विकास, मधुर-मधुर हास, दिव्य आभूषणों का विलास, एवं श्रीप्रियाजी के पुलकित अंश पर सुवलित बाहु पास है; उस रास में श्रीराधा की मैं कब उपासना (अभ्यर्चना) करूंगी ?

वदन-स्मरण १६० मालतीवृत्तम्

यदि कनक - सरोजं कोटि-चन्द्रांशु-पूर्णं,
नव - नव मकरन्द — स्यन्दि सौन्दर्य्य-धाम ।
भवति[1] लसित चञ्चत्खञ्जन द्वन्द्वमास्यं,
तदपि मधुर हास्यं दत्त दास्यं न तस्याः ।।

यदि कोई सौन्दर्य-धाम स्वर्ण-कमल कोटि-कोटि चन्द्रों की किरणों से पूर्ण हो और जिससे नवीन-नवीन मकरन्द झरता ही रहता हो, वह कमल, सौन्दर्य्य का तो मानो धाम ही हो; जिसमें दो खञ्जन खेल रहे हों ऐसा अनुपम कमल भी श्रीप्रियाजी के मुख-कमल के मधुर हास के दास्य को प्राप्त नहीं करता ।

श्रीमुख-चन्द्र दर्शनाभिलाषा १६१ पृथ्वीवृत्तम्

सुधाकरमुधाकरं प्रतिपदस्फुरन्माधुरी,
धुरीण नव चन्द्रिका जलधि तुन्दिलं राधिके ।
अतृप्त हरि-लोचन-द्वय चकोर - पेयं कदा,
रसाम्बुधि समुन्नतं वदन-चन्द्रमीक्षे तव ।।

जो सुधाकर (चन्द्र) को भी असत् कर दिखाने वाला है, जो पद-पद पर देदीप्यमान् माधुरी के श्रेष्ठतम् सार-रूप नवीन किरणों के समुद्र से पूरित है, जो श्रीहरि अतृप्त के युगल-लोचन-चकोरों का पेय है और जो रस-समुद्र द्वारा प्रकर्ष को प्राप्त है । हे श्रीराधे ! मैं आपके उस वदन-चन्द्र को कब देखूंगी ?

केलि-वर्णन १६२ स्रग्धरावृत्तम्

अङ्ग-प्रत्यङ्ग रिङ्गन्मधुरतर महा कीर्त्ति-पीयूष सिन्धो-
रिन्दोः कोटिर्विनिंदद्वदनमति मदालोल नेत्रं दधत्याः ।
राधाया सौकुमार्य्याद्भुत ललित तनोः केलि-कल्लोलिनीना-
मानन्दस्यन्दिनीनां प्रणय-रसमयान् किं विगाहे प्रवाहान् ।।

१—पाठान्तर-भजति ।

जिनके अङ्ग - प्रत्यङ्ग से मधुरातिमधुर महा-कीर्ति-पीयूष-सिन्धु प्रवाहित होता रहता है, जिनका कोटि-कोटि चन्द्र-विनिन्दक शोभाशाली श्रीमुख अति मद-चञ्चल नेत्रों से युक्त है; अहो ! जो अत्यद्भुत सौकुमार्य्य से अति-ललित तनु हैं । क्या मैं ऐसी श्रीराधा की प्रणय-रसमयी आनन्द-निर्झरिणी केलि-सरिता-प्रवाह में कभी अवगाहन करूँगी ?

मनोरथ **१६३** **मन्दाक्रान्तावृत्तम्**

मत्कण्ठे किं नखरशिखया दैत्यराजोऽस्मि नाहं,
मैवं पीडां कुरु कुच-तटे पूतना नाहमस्मि ।
इत्थं कीरैरनुकृत-वचः प्रेयसा-सङ्गतायाः,
प्रातः श्रोष्ये तव सखि कदा केलि-कुञ्जे मृजन्ती ॥

"मेरे कण्ठ में नखाग्र-घात क्यों करते हो मैं कोई दैत्यराज (तृणावर्त्त) तो हूँ नहीं ? अरे ! मेरी कुच-तटी में पीड़ा मत दो मैं पूतना नहीं हूँ !" हे सखी ! प्रियतम-सङ्गम के समय तुम्हारे इन शुक-अनुकृत वचनों को प्रातः-काल केलि-कुञ्ज का मार्जन करती हुई मैं कब सुनूँगी ?

अनन्यता **१६४** **शार्दूलविक्रीडितम्**

जाग्रत्स्वप्न सुषुप्तिषु स्फुरतु मे राधापदाब्जच्छटा,
वैकुण्ठे नरकेथ वा मम गतिर्नान्यास्तु राधां विना ।
राधा-केलि-कथा-सुधाम्बुधि महावीचीभिरान्दोलितं,
कालिन्दी-तट-कुञ्ज-मन्दिर-वरालिन्दे मनो विन्दतु ॥

श्रीराधा-केलि-कथा-सुधा-समुद्र की महान् लहरियों से आन्दोलित मेरा मन कालिन्दी-कूलवर्त्ती श्रेष्ठ लता मन्दिर के प्राङ्गण में ही आनन्द पाता रहे और जागृत, स्वप्न एवं सुषुप्ति में भी श्रीराधा-पद-कमलों की छटा ही मेरे मन में स्फुरित होती रहे, किं बहुना, बैकुण्ठ अथवा नरक में भी श्रीराधा के अतिरिक्त मेरे लिये कोई अन्य गति न हो ।

सेवाभिलाषा १६५ शिखरिणीवृत्तम्

अलिन्दे कालिन्दी - तट - नवलता - मन्दिरवरे-
रतामर्दोद्भूतश्रमजल — भरापूर्णवपुषोः ।
सुखस्पर्शेनामीलितनयनयोः शीतमतुलं,
कदा कुर्य्यां सम्वीजनमहह राधा - मुरभिदोः ॥

अहा ! कालिन्दी-कूलवर्त्ती नव-लता-मन्दिर-गत-प्राङ्गण में रति-केलि-मर्दन से उद्भूत (प्रकट हुए) श्रम-जल-प्रवाह से परिपूरित शरीर और सुख-स्पर्श से आमीलित (मुँदे हुए) नयन श्रीराधा-मधुसूदन को मैं कब अतुल शीतल सम्वीजन (द्वारा) बयार करूँगी ?

नित्य-विहार १६६ पृथ्वीवृत्तम्

क्षणं मधुर गानतः क्षणममन्द हिन्दोलतः,
क्षणं कुसुम वायुतः सुरत-केलि-शिल्पैः क्षणम् ।
अहो मधुरसद्रस प्रणय-केलि वृन्दावने,
विदग्धवरनागरी - रसिक - शेखरौ - खेलतः ॥

अहो ! मधुर एवं श्रेष्ठ रस-केलिमय श्रीवृन्दावन में विदग्ध श्रेष्ठ, नागरी-मणि (श्रीप्रियाजी) एवं रसिक-शेखर (श्रीलालजी) कभी तो मधुर-मधुर गान से, कभी अमन्द (वेगवान्) हिण्डोल से, (झूलकर) कभी कुसुम-सुरभित वायु के सेवन से, तो कभी सुरत-केलि-चातुरी का प्रकाश करके क्रीड़ा करते रहते हैं ।

सुरत-केलि-चातुरी १६७ शार्दूलविक्रीडितम्

अद्यश्याम किशोर मौलिरहह प्राप्तो रजन्या-मुखे,
नीत्वा तां करयोः प्रगृह्य सहसा नीपाटवीं प्राविशत् ।
श्रोष्ये तल्प मिलन्महा रतिभरे प्राप्तेपि शीत्कारितं,
तद्वीची-सुख-तर्जनं किमु हरेः स्वश्रोत्र रन्ध्राश्रितम् ॥

अहह !. आज सहसा सन्ध्या - समय श्याम - किशोर - मौलि उन (श्रीराधा) के दोनों हाथ पकड़कर एकान्त कदम्ब-अटवी में प्रवेश कर गये; वहाँ केलि-तल्प-मिलित महा-रति-प्रवाह को प्राप्त हुए श्रीलालजी के श्रवण-रन्ध्रों के आश्रय-रूप (श्रीराधा) सुख-तरङ्ग के तर्जन-शीत्कार को क्या मैं श्रवण करूंगी ?

अभिलाषा १६८ मन्दाक्रान्तावृत्तम्

श्रीमद्राधे त्वमथ मधुरं श्रीयशोदाकुमारे,
प्राप्ते कैशोरकमतिरसाद्वल्गसे साधु-योगम् ।
इत्थं बाले महसि कथया नित्यलीला-वयःश्री,
जातावेशा प्रकट सहजा किन्नु दृश्या किशोरी ।।

अहो ! यशोदानन्दन श्रीकृष्ण तो कैशोरावस्था को प्राप्त हो ही चुके हैं, और श्रीमती राधे ! तुम भी प्रेमाधिक्य के वश होकर उसी मधुर साधु-योग को प्राप्त हो गई हो; इस प्रकार कहते ही जिनका नित्य लीलानुकूल वयःश्री में प्रवेश हुआ है; ऐसी [प्राकट्य के साथ ही] किशोरावस्था को प्राप्त किशोरी क्या हमारे दृष्टि-गोचर होंगी ?

नित्य विहार १६९ शार्दूलविक्रीडितम्

एकं काञ्चन चम्पकच्छवि परं नीलाम्बुद श्यामलं,
कन्दर्प्पोत्तरलं तथैकमपरं नैवानुकूलं वहिः ।
किञ्चैकं बहुमान-भङ्गि रसवच्चाटूनि कुर्वत्परं,
वीक्षे क्रीडति कुञ्जसीम्नि तदहो द्वन्द्वंमहा मोहनम् ।।

एक कनक-चम्पक-छविमान् है, तो दूसरा सजल-सघन-नील-मेघवत् श्याम । एक कन्दर्प-ज्वर से चञ्चल हो रहा है, तो दूसरा अन्तर से अनुकूल होकर भी बाहर से प्रतिकूल है । ऐसे ही एक मान की अनेक भङ्गिमाओं से पूर्ण है तो दूसरा रस-पूर्ण वचनों के द्वारा चाटुकारी-परायण । अहो ! क्या मैं केलि-निकुञ्ज की सीमा में इन महा मोहन युगल को देख सकूँगी ?

उपरोक्त भावानुसार ही १७० पृथ्वीवृत्तम्

विचित्र रति - विक्रमं दधदनुक्रमादाकुलं,
महा मदन-वेगतो निभृत मञ्जु कुञ्जोदरे।
अहो विनिमयन्नवं किमपि नील-पीतं पटं,
मिथो मिलितमद्भुतं जयति पीत - नीलं महः॥

अहो! महा-मदन-वेग से आकुल होकर दोनों कभी तो अनुक्रम से विचित्र रति-पराक्रम को धारण करते हैं और कभी अनिर्वचनीय अभिनव-नील-पीत पट का आपस में विनिमय करते हैं। इस प्रकार मञ्जुल निभृत निकुञ्ज-मन्दिर में अलौकिक अद्भुत रूप से मिलित कोई दो अनिर्वचनीय नील-पीत ज्योति सर्वोत्कृष्टता को प्राप्त हैं।

उपरोक्त भावानुसार ही १७१ पृथ्वीवृत्तम्

करे कमलमद्भुतं भ्रमयतोर्मिथोंसार्पित,
स्फुरत्पुलक दोर्लता युगलयोः स्मरोन्मत्तयोः।
सहास-रस-पेशलं मद करीन्द्र-भङ्गीशतै-
र्गतिं रसिकयोर्द्वयोः स्मरत चारु वृन्दावने॥

अद्भुत कमल को हाथों में घुमाते हुए, एवं परस्पर स्कन्धों पर पुलकित भुजलता अर्पित किये हुए, कामोन्मत्त, वृन्दावन-विहारी, रसिक युगल की सहास-रस-सुन्दर, शत-शत मदपूर्ण करीन्द्र-गतिमान् भङ्गिमाओं के समान गति का (हे मेरे मन!) तू स्मरण कर?

सेवा-वाञ्छा १७२ स्रग्धरावृत्तम्

खेलन्मुग्धाक्षि मीन स्फुरदधरमणीविद्रुम-श्रोणि-भार,
द्वीपायामोंत्तरङ्ग स्मरकलभ-कटाटोप वक्षोरुहायाः।
गम्भीरावर्त्तनाभेर्बहलहरि महा प्रेम-पीयूषसिन्धोः,
श्रीराधाया पदाम्भोरुह परिचरणे योग्यतामेव मृग्ये[1]॥

१—पाठान्तर-मेपे।

जिनके मुग्ध नयन ही चञ्चल-मीन हैं, देदीप्यमान् अधर ही विद्रुम-मणि हैं, जिनके पृथु नितम्ब ही द्वीप हैं उस द्वीप-विस्तार के तरङ्गायित-प्रदेश में काम-करि-शावक के कुम्भ-द्वय के समान युगल-कुच हैं, जिनकी नाभि गम्भीर आवर्त्त के समान है; मैं ऐसी श्रीकृष्ण-प्रेमामृत-महासिन्धु-रूपा श्रीराधा के युगल-चरणारविन्दों की परिचर्य्या करने की योग्यता का अन्वेषण करती हूँ ।

विरह-शून्य एकात्म भाव १७३ स्रग्धरावृत्तम्

विच्छेदाभास मानादहह निमिषतो गात्रविस्रंसनादौ,
चञ्चत्कल्पाग्नि - कोटि ज्वलितमिव भवेद्वाह्यभ्यन्तरं च ।
गाढ स्नेहानुबन्ध - ग्रथितमिव तयोरद्भुत प्रेम - मूर्त्योः,
श्रीराधा-माधवाख्यं परमिह मधुरं तद् द्वयं धाम जाने ॥

कैसा आश्चर्य है कि केवल शरीर से ही विलग होने में निमेष-मात्र का वियोगाभास ही जिनके मन और देह के लिये प्रकाशमान् कोटि-प्रलयाग्नि-ज्वाला के समान प्रतीत होता है। बस; उन्हीं गाढ़-स्नेहानुबन्ध से ग्रथित (गुंथे हुए से) अद्भुत प्रेम-मूर्ति श्रीराधा-माधव-नामक युगल को ही मैं इस संसार में (अपना) परम-मधुर आश्रय जानती हूँ ।

अन्तरङ्ग-सेवा अभिलाषा १७४ शिखरिणीवृत्तम्

कदा रत्युन्मुक्तं कचभरमहं संयमयिता,
कदा वा संधास्ये त्रुटित नव-मुक्तावलिमपि ।
कदा वा कस्तूर्य्यास्तिलकमपि भूयो रचयिता,
निकुञ्जान्तर्वृत्ते नव रति-रणे यौवन मणेः ॥

नव-निकुञ्ज में नित्याभिनव रतिरण के उपरान्त, यौवन - मणि श्रीराधा के विगलित (उन्मुक्त) केश-पाश का मैं कब बन्धन करूंगी ? उनकी टूटी मुक्ता-माला को कब पिरोऊँगी अथवा कस्तूरी-पङ्क के द्वारा तिलक की पुनः रचना कब करूँगी ?

वृन्दावन महिमा १७५ स्रग्धरावृत्तम्

किं ब्रूमोन्यत्र कुण्ठीकृतकजनपदे धाम्न्यपि श्रीविकुण्ठे,
राधा माधुर्य्यं वेत्तामधुपतिरथ तन्माधुरीं वेत्ति राधा।
वृन्दारण्य - स्थलीयं परम - रस - सुधा - माधुरीणां धुरीणां,
तद्द्वन्द्वं स्वादनीयं सकलमपि ददौ राधिका-किङ्करीभ्यः ॥

अन्यत्र की तो बात ही क्या श्रीविकुण्ठ-धाम भी (श्रीराधा-माधुर्य्य के अभाव से) कुण्ठित-प्रदेश बन गया है, क्योंकि श्रीराधा के माधुर्य्य को केवल श्रीमाधव ही जानते हैं और श्रीमाधव के माधुर्य्य को केवल श्रीराधा जानती हैं और इन आस्वादनीय युगल को परम रस-सुधा-माधुरी-अग्रगण्य श्रीवृन्दारण्य-स्थली ने श्रीराधा-किङ्करी-गणों को सम्पूर्ण रूप से प्रदान कर दिया है।

इष्ट परत्व १७६ पृथ्वीवृत्तम्

लसद्वदन - पङ्कजा नव गभीर नाभि - भ्रमा,
नितम्ब-पुलिनोल्लसन्मुखर काञ्चि-कादम्बिनी।
विशुद्ध रस-वाहिनी रसिक-सिन्धु-सङ्गोन्मदा,
सदा सुर-तरङ्गिणी जयति कापि वृन्दावने ॥

जिसमें प्रफुल्ल मुख ही कमल है। नव-गम्भीर नाभि ही भँवर है। नितम्ब ही पुलिन हैं। उस नितम्ब-देश (पुलिन) में मुखरित काञ्ची ही मानो मेघ-माला है। जिसमें केवल विशुद्ध रस ही प्रवाहित होता रहता है और जो रसिक-सिन्धु (श्रीलालजी) से सङ्गम करने के लिये उन्मद हो रही है। उस श्रीवृन्दावनस्थ अनिर्वचनीय सुर-तरङ्गिणी की सदा जय हो।

उपरोक्तानुसार ही १७७ पृथ्वीवृत्तम्

अनङ्ग नव रङ्गिणी रस-तरङ्गिणी सङ्गतां,
दधत्सुख-सुधामये स्वतनु-नीरधौ-राधिकाम्।
अहो मधुप-काकली मधुर-माधवी मण्डपे,
स्मरक्षुभितमेधते सुरत - सीधुमत्तं महः ॥

अहो ! आश्चर्य्य तो देखो ! मधुप-मन्द-गुञ्जन-पूरित मधुर माधवी-मण्डप में कोई सुरतामृत-मत्त दिव्य (नील) ज्योति स्मर-पीड़ा से क्षुभित होकर भी वृद्धि को प्राप्त हो रही है। और उस दिव्य ज्योति ने अपने सुख-सुधामय शरीर-समुद्र में ही नव-नव अनङ्गों को भी अनुरञ्जित करने वाली रस-तरङ्गिणी श्रीराधिका को धारण कर रखा है !

राधा रूप वृन्दावन १७८ शार्दूलविक्रीडितम्

रोमालीमिहिरात्मजा सुललिते बन्धूक-बन्धु प्रभा,
सर्वाङ्गेस्फुटचम्पकच्छबिरहो नाभी-सरः शोभना।
वक्षोजस्तवका लसद्भुजलता शिञ्जापतञ्चछुंकृतिः,
श्रीराधा हरते मनोमधुपतेरन्येव वृन्दाटवी ॥

अहो ! जिनकी रोमावली यमुना के समान है। अङ्ग-प्रभा, बन्धूक-बन्धु (पुष्प-विशेष) के समान है । जिनके सुललित सर्वाङ्ग में चम्पक की छवि प्रकट हो रही है। जो नाभि-सरोवर के कारण दर्शनीय (शोभना) बन रही हैं। जिनके वक्षोज ही पुष्प-गुच्छ हैं। भुजा ही लता-रूप में शोभित हैं और जिनके आभूषणों का शब्द ही मधुर झङ्कार है। ऐसी श्रीराधा दूसरी वृन्दाटवी के समान माधव के मन का हरण कर रही हैं।

अन्तरङ्ग सेवा मनोरथ १७९ शार्दूलविक्रीडितम्

राधामाधवयोर्विचित्र सुरतारम्भे निकुञ्जोदर-
स्रस्त प्रस्तर सङ्गतैर्वपुरलं कुर्वेङ्ग रागैः कदा।
तत्रैव त्रुटिताः स्रजो निपतिताः संधायभूयः कदा,
कण्ठे धारयितास्मि मार्जन कृते प्रातः प्रविष्टास्म्यहम् ॥

मैं प्रातःकाल निकुञ्ज-मन्दिर के मध्य भाग के सम्मार्जन के लिये प्रविष्ट होकर श्रीराधा-माधव के विचित्र सुरत-केलि के आरम्भ में अस्त-व्यस्त शय्या में लगे हुए पङ्किल अङ्गराग के द्वारा कब अपने शरीर को भूषित करूँगी ? एवं वहीं टूटकर गिरी हुई उनकी पुष्प-माला का पुनः संधान करके उसे कब कण्ठ में धारण करूँगी ?

प्रेम वैचित्य १८० शार्दूलविक्रीडितम्

श्लोकान्प्रेष्ठ यशोङ्कितान् गृहशुकानध्यापयेत्कर्हिचिद्,
गुञ्जा-मञ्जुलहार बर्हमुकुटं निर्माति काले क्वचित् ।
आलिख्य प्रियमूर्त्तिमाकुल कुचौ सङ्घट्टयेद्वा कदा-
प्येवं व्यापृतिभिर्दिनं नयति मे राधा प्रिय स्वामिनी ।।

कभी घर के तोतों को अपने प्रियतम के यश से अङ्कित श्लोकों का अध्यापन कराती हैं, तो कभी मंजुल गुञ्जा-हार और मोर-मुकुट का निर्माण करती हैं । कभी प्रियतम की प्रिय-मूर्त्ति का चित्रण करके उसे अपने आकुल युगल-कुचों से चिपका ही लेती हैं । इस प्रकार के व्यापारों द्वारा मेरी प्रिय स्वामिनी श्रीराधा अपना वियोग-पूर्ण दिन व्यतीत करती हैं ।

सर्वात्म-समर्पण-भाव १८१ शार्दूलविक्रीडितम्

प्रेयः सङ्ग-सुधा सदानुभवनी भूयो भवद्भाविनी,
लीला-पञ्चम रागिणी रति-कला-भङ्गी-शतोद्भाविनी ।
कारुण्य-द्रव-भाविनी कटि-तटे काञ्ची-कलाराविणी,
श्रीराधैव गतिर्ममास्तु पदयोः प्रेमामृत-श्राविणी ।।

जो सदैव प्रियतम-सङ्ग-सुधास्वादन का ही अनुभव करती हैं, जो नित्य नवीन भाविनी (कामिनी) हैं, जो लीला-काल में पञ्चम-राग की अनुरागवती हैं, जो रतिकला की शत-शत भङ्गिमाओं का उद्भावन करने वाली हैं, जो करुण रस की सृष्टि कर्त्री हैं, जो कटि-तट में काञ्ची-कला-शब्द-कारिणी हैं, तथा जिनके पद-युगल से प्रेमामृत झरता ही रहता है, वे श्रीराधा ही मेरी एकमात्र गति हैं ।

प्रिया स्वरूप वर्णन १८२ शार्दूलविक्रीडितम्

कोटीन्दुच्छवि हासिनी नव-सुधा-सम्भार सम्भाषिणी,
वक्षोज द्वितयेन हेम-कलश श्रीगर्व-निर्वासिनी ।
चित्र-ग्राम-निवासिनी नव-नव प्रेमोत्सवोल्लासिनी,
वृन्दारण्य-विलासिनी किमुरहो भूयाद्धृदुल्लासिनी ।।

जो कोटि-चन्द्रों की छवि का उपहास करने वाली हैं, जिनका सम्भाषण नवीनतम् सुधा-समूह से पूर्ण है। जो अपने युगल-वक्षोज से स्वर्ण-कुम्भ के श्रीगर्व का निर्वासन करती हैं; वे प्रेमोत्सव-उल्लासमयी चित्र-ग्राम (वृहत्सानु, बरसाना) निवासिनी श्रीवृन्दारण्य-विलासिनी (श्रीराधा) क्या मेरे लिये एकान्त-हृदयोल्लास की दाता होंगी ?

प्रिया-अभिलाषा १८३ शिखरिणीवृत्तम्

कदा गोविन्दाराधन ललित ताम्बूल शकलं,
मुदा स्वादं स्वादं पुलकित तनुर्मे प्रिय सखी।
दुकूलेनोन्मीलन्नव कमल किञ्जल्क रुचिना,
निचोलाङ्गी सङ्गीतक निजकलाः शिक्षयति माम् ॥

गोविन्द की प्रसन्नता से प्राप्त हुए ललित ताम्बूल-खण्ड का बारम्बार स्वाद लेते-लेते जिनका शरीर पुलकित हो रहा है एवं जिन्होंने देदीप्यमान् नव-कमल-किञ्जल्क के रङ्ग का सुन्दर दुकूल अपने श्रीअङ्ग में धारण कर रखा है; वह मेरी प्रिय सखी श्रीराधा क्या कभी मुझे सङ्गीत-नाट्य में अपनी निपुणता की शिक्षा देंगी ?

श्रीराधिका-वदन-स्मरण १८४ पृथ्वीवृत्तम्

लसद्दशन-मौक्तिक प्रवर-कान्ति-पूरस्फुरन्,
मनोज्ञ नव पल्लवाधर-मणिच्छटा-सुन्दरम्।
चरन्मकर-कुण्डलं चकित चारु नेत्राञ्चलं,
स्मरामि तव राधिके वदनमण्डलं निर्मलम् ॥

हे श्रीराधिके ! मैं आपके निर्मल वदन-मण्डल का स्मरण करती हूँ। अहा ! जिसमें शोभायमान् दन्तावली मानों मोतियों की उज्ज्वल कान्ति से पूर्ण है एवं अधर-पल्लव बड़े ही मनोज्ञ, देदीप्यमान् और विद्रुम-मणि की छटा से भी अधिक सुन्दर हैं। कपोलों पर चञ्चल मकराकार कुण्डल और मुख-मण्डल पर चकित चारु नेत्राञ्चलों की अपूर्व शोभा है !

श्रीमुख-स्मरण १८५ पृथ्वीवृत्तम्

चलत्कुटिल कुन्तलं तिलक-शोभि-भालस्थलं,
तिल-प्रसव नासिका-पुट-विराजि मुक्ता-फलम् ।
कलङ्करहितामृतच्छवि समुज्ज्वलं राधिके,
तवाति रति-पेशलं वदन-मण्डलं भावये ।।

हे श्रीराधिके ! आपके जिस वदन-मण्डल में कुटिल अलकावली चञ्चल हो रही है, भाल-स्थल तिलक से शोभित है, नासा पुट में तिल-पुष्प की भाँति मुक्ताफल जगमगा रहा है और जो कलङ्क-रहित सजीव छवि से समुज्ज्वल है, आपके उस अति रस-पेशल (रसाधिक्य सुन्दर) वदन-मण्डल की मैं भावना करती हूँ ।

विहार-व्याप्ति १८६ मन्दाक्रान्तावृत्तम्

पूर्ण प्रेमामृत-रस समुल्लास सौभाग्यसारं,
कुञ्जे-कुञ्जे नव रति-कला-कौतुकेनात्तकेलि ।
उत्फुलेन्दीवर कनकयोः कान्ति-चौरं किशोरं,
ज्योतिर्द्वन्द्वं किमपि परमानन्द कन्दं चकास्ति ।।

जो पूर्ण प्रेमामृत-रस के समुल्लास-सौन्दर्य के भी सार रूप हैं। जिन्होंने नवीन रति - कला के कौतुक से कुञ्जों-कुञ्जों में केलि करना अङ्गीकार किया है एवं जो विकसित-नील-कमल और कनक-कमल की कान्ति को भी हरण करने वाले हैं, वही किशोराकृति-ज्योति युगल किसी अनिर्वचनीय परमानन्द-कन्द स्वरूप में शोभा को प्राप्त हो रहे हैं ।

कृपा याचना १८७ शिखरिणीवृत्तम्

ययोन्मीलत्केली-विलसित कटाक्षैक कलया,
कृतो वन्दी वृन्दाविपिन कलभेन्द्रो मदकलः ।
जडीभूतः क्रीडामृग-इव यदाज्ञा-लव कृते,
कृती नः सा राधा शिथिलयतु साधारण-गतिम् ।।

जिन्होंने किञ्चित् विकसित केलि-विलास-जन्य कटाक्षों की एक ही कला से श्रीवृन्दावन के मदोन्मत्त गजराज-किशोर (श्रीलालजी) को बन्दी बना लिया है। और ऐसा बन्दी कि पूर्ण चतुर होते हुए भी वे उनकी लेश-मात्र आज्ञा के वशवर्ती बने क्रीड़ा-मृग की तरह जड़ हो रहे हैं; वही श्रीराधा मेरी साधारण गति (संसार-गति) को शिथिल करें।

दया-दृष्टि की याचना १८८ **शार्दूलविक्रीडितम्**

श्रीगोपेन्द्र-कुमार-मोहन-महाविद्ये स्फुरन्माधुरी,
सारस्फार रसाम्बुराशि सहज प्रस्यन्दि-नेत्राञ्चले।
कारुण्यार्द्र कटाक्ष-भङ्गि मधुरस्मेराननांभोरुहे,
हा हा स्वामिनि राधिके मयिकृपा-दृष्टि मनाङ् निक्षिप॥

हे गोपेन्द्र-कुमार-मोहन-कारिणि महाविद्ये ! देदीप्यमान् माधुरी-सार-विस्तारक रस-समुद्र का सहज प्रवाह करने वाले नेत्र-प्रान्त वाली प्रिये ! हे करुणा-स्निग्ध कटाक्ष-भङ्गिमा-सहिते ! हे मधुर मन्द हास्यमय वदन-कमले ! हे स्वामिनि ! हे श्री राधिके ! हा ! हा !! आप मुझ पर अपनी थोड़ी-सी ही तो कृपा-दृष्टि का विक्षेप कीजिये ?

शोभा-पूर्ण झाँकी १८९ **मन्दाक्रान्तावृत्तम्**

ओष्ठ प्रान्तोच्छलित दयितोद्‌गीर्ण ताम्बूल रागा-
रागानुच्चैर्निज-रचितया-चित्र भङ्‌ग्योन्नयन्ती।
तिर्यग्ग्रीवा रुचिर रुचिरोदञ्चदाकुञ्चितभ्रूः,
प्रेयः पार्श्वे विपुल पुलकैर्मण्डिता भाति राधा॥

जिन्होंने प्रियतम को अपना चर्वित ताम्बूल देने के लिये उसे अधरों तक लाया है, जिससे ओष्ठ-प्रान्त में लालिमा उच्छलित हो रही है। जो विचित्र भङ्गिमाओं के सहित स्वरचित विभिन्न रागिनियों का उच्च स्वर में गान कर रही हैं, इस कारण ग्रीवा कुछ तिरछी सी हो रही है और युगल रुचिर भ्रू-लताएँ कुछ-कुछ कुञ्चित होकर ऊपर की ओर चढ़ सी रही हैं। गान-सिद्धि के आनन्द से विपुल-पुलकावलि-मण्डित वे श्रीराधा अपने प्रियतम के पार्श्व में शोभा पा रही हैं।

अतिसख्य १९० मन्दाक्रान्तावृत्तम्

किं रे धूर्त्त-प्रवर निकटं यासि नः प्राण-सख्या,
नूनंवाला कुच-तट-कर - स्पर्श मात्राद्विमुह्येत् ।
इत्थं राधे पथि-पथि रसान्नागरं तेनुलग्नं,
क्षिप्त्वा भङ्ग्या हृदयमुभयोः कर्हि सम्मोहयिष्ये ।।

"क्यों रे धूर्त्त श्रेष्ठ ! हमारी प्राण-प्यारी सखी के निकट क्यों चला आता है ? दूर ही रह । तू नहीं जानता कि सुकुमारी बाला की कुच-तटी का स्पर्श करने मात्र से ही तू विमुग्ध हो जायगा !"

हे श्रीराधे ! इस प्रकार वाणी-चातुर्य्य के द्वारा मैं कब तुम्हारे अनुगमन-शील रसिक-नागर को दूर हटाकर, तुम दोनों के हृदय को विमुग्ध करूँगी ?

मनोरथ १९१ शिखरिणीवृत्तम्

कदा वा राधायाः पदकमलमायोज्य हृदये-
दयेशं निःशेषं नियतमिह जह्यामुपविधिम् ।
कदा वा गोविन्दः सकल सुखदः प्रेम करणा-
दनन्ये धन्ये वै स्वयमुपनयेत स्मरकलाम् ।।

मैं कब श्रीराधा के करुणा-पूर्ण पद-कमलों को हृदय में धारण करके इस संसार में नित्य-आगत वेद-विधियों का अशेष रूप से त्याग कर दूँगी और कब सर्व-सुखद गोविन्द मुझे सेवाधिकार प्रदान करने के निमित्त मुझ अनन्य-धन्य को स्मर-कला (निकुञ्जान्तर सेवा-योग्य काम-कला) का शिक्षण करेंगे ?

सेवा-भावना १९२ शिखरिणीवृत्तम्

कदा वा प्रोद्दाम स्मर-समर-संरम्भ-रभस,
प्ररूढ़ स्वेदाम्भः प्लुत लुलित चित्राखिलतनू ।
गतौ कुञ्ज-द्वारे सुख मरुति-संवीज्य परया,
मुदाहं श्रीराधा-रसिक-तिलकौ स्यां सुकृतिनी ।।

प्रकर्ष काम-सङ्ग्राम के आवेश-युक्त वेग के कारण उत्पन्न हुए प्रस्वेद-जल से जिनके युगल-वपु आर्द्र, (गीले) शिथिल और चित्रित हो रहे हैं, वे श्रीराधा और रसिक-शेखर दोनों कुञ्जद्वार में समासीन हैं। मैं कब परम-हर्ष के साथ उन दोनों को बयार करके पुण्य-शालिनि बनूँगी ?

पाद-सम्वाहन-सेवा-अभिलाषा १९३ शिखरिणीवृत्तम्

मिथः प्रेमावेशाद्घन पुलक दोर्वल्लि रचित,
प्रगाढ़ा श्लेषेणोत्सव रसभरोन्मीलित दृशौ ।
निकुञ्जक्लृप्तेवै नव कुसुम-तल्पेधि - शयितौ,
कदा पत्सम्वाहादिभिरहमधीशौ नु सुखये ॥

निकुञ्ज-भवनान्तर-स्थित नव-नव-पुष्प-रचित शय्या पर शयन करते हुए, एवं परस्पर प्रेमावेश-जनित घन पुलकाङ्कित भुजलताओं से आवेष्टित, गाढ़ आलिङ्गन के उत्सव-रस से परिपूर्ण अर्ध निमीलित दृष्टि-युक्त युगल अधीश्वरों को मैं कब पादसम्वाहनादि सेवाओं के द्वारा सुख पहुँचाऊँगी ?

रूप-छटा १९४ पृथ्वीवृत्तम्

मदारुण विलोचनं कनक-दर्पकामोचनं,
महा प्रणयमाधुरी रस-विलास नित्योत्सुकम् ।
लसन्नववयः श्रिया ललित भङ्गि-लीलाभयं,
हृदा तदहमुद्वहे किमपि हेमगौरं महः ॥

जिनके युगल विलोचन मद से अरुण वर्ण के हो रहे हैं। जो (अपनी गोरता से) कुन्दन के भी मद का मोचन करती हैं। जो महा प्रणय-माधुरी के रस-विलास में नित्य उत्साह-पूर्ण हैं एवं जिनकी उल्लसित नवीन वयःश्री अत्यन्त ललित भङ्गि-लीलामयी है । मैं उन अनिर्वचनीय हेम-गौर ज्योति को अपने हृदय में धारण करती हूँ ।

शय्या-विहार १९५ शिखरिणीवृत्तम्

मदाघूर्णन्नेत्रं नव रति-रसावेश-विवशो-
ल्लसद्गात्रं प्राण-प्रणय-परिपाट्यां परतरम् ।
मिथो गाढाश्लेषाद्वलयमिव - जातं मरकत,
द्रुत स्वर्णच्छायं स्फुरतु मिथुनं तन्मम हृदि ॥

मद-घूर्णित विलोचन, नवीन रति रसावेश विवशता से उल्लसित वपु और प्राण-सहित प्रणय-परिपाटी में परतर, (परम श्रेष्ठ) पारस्परिक आलिङ्गन से वलयाकार-भूत, इन्द्र-नील मणि (श्याम) और द्रवीभूत स्वर्णच्छविमान् (गौर) श्यामल-गौर युगल मेरे हृदय में स्फुरित हों ।

वृन्दावन-वैभव १९६ मालाजाति, इन्द्रवज्रावृत्तम्

परस्परं प्रेम-रसे-निमग्न-
मशेष सम्मोहन रूप-केलि ।
वृन्दावनान्तर्नवकुञ्जगेहे,
तन्नीलपीतं मिथुनं चकास्ति ॥

जो परस्पर प्रेम रस में निमग्न हैं और जिनकी केलि सम्पूर्ण चराचर के लिये सम्मोहन रूप है । वे कोई नील-पीत युगल श्रीवृन्दावनान्तर्गत नव-कुञ्ज-भवन में शोभा पा रहे हैं ।

युगल प्राप्ति-विषयक प्रार्थना १९७ रामाजाति इन्द्रवज्रावृत्तम्

आशास्य-दास्यं-वृषभानुजाया-
स्तीरे समध्यास्य च भानुजायाः ।
कदा नु वृन्दावन-कुञ्ज-वीथी-
ष्वहं नु राधे ह्यतिथिर्भवेयम् ॥

भानु-नन्दिनी श्रीयमुना के तट में अविचल भाव से स्थिर रहकर एवं वृषभानु-नन्दिनी के दास्य-भाव को मन में धारण करके मैं वृन्दावन की कुञ्ज-वीथियों में क्या कभी अतिथि (अभ्यागत) होऊँगी ?

वृन्दावन केलि **१९८** **गीतिवृत्तम्**

कालिन्दी-तट-कुञ्जे,
पुञ्जीभूतं रसामृतं किमपि ।
अद्भुत केलि-निधानं,
निरवधि राधाभिधानमुल्लसति ।।

कालिन्दी-तट के कुञ्ज में कोई अनिर्वचनीय पुञ्जीभूत रसामृत एवं निरवधि अद्भुत केलि-निधान श्रीराधा नामक स्वरूप उल्लसित हो रहा है ।

प्रिया-स्वरूप वर्णन **१९९** **गीतिवृत्तम्**

प्रीतिरिव मूर्ति-मती-
रस-सिन्धोः सार सम्पदिव विमला ।
वैदग्धीनां हृदयं-काचन
वृन्दावनाधिकारिणी जयति ।।

मूर्तिमती प्रीति-स्वरूपा, रस-सिन्धु की विमल सार सम्पत्ति एवं चतुर-शिरोमणि सखियों की भी हृदय-रूपा कोई अनिर्वचनीय श्रीवृन्दा-वनाधिकारिणी (स्वामिनी) सर्वोत्कृष्टता को प्राप्त हैं ।

निकुञ्ज विहारी स्वरूप वर्णन २०० श्रीआर्यावृत्तम्

रसघन मोहन मूर्त्ति,
विचित्रकेलि-महोत्सवोल्लसितम् ।
राधा-चरण विलोडित,
रुचिर शिखण्डं-हरि वन्दे ॥

जिनका रुचिर मयूर-पिच्छ श्रीराधा चरणों में यत्र-तत्र विलोडित होता रहता है तथा जो विचित्र केलि-महोत्सव से उल्लसित हैं, मैं उन रस-घन-मोहन-मूर्ति हरि (श्रीकृष्ण) की वन्दना करती हूँ ?

सेवा-भावना २०१ शिखरिणीवृत्तम्

कदा गायं गायं मधुर - मधुरीत्या मधुभिद-
श्चरित्राणि स्फारामृत-रस विचित्राणि वहुशः ।
मृजन्ती तत्केली-भवनमभिरामं मलयज-
च्छटाभिः सिञ्चन्ती रसहृद निमग्नास्मि भविता ॥

मैं कब मधुसूदन के घनीभूत अमृत-रस-पूर्ण विचित्र एवं अनन्त चरित्रों का मधुर-मधुर रीति से गायन करती हुई और उनके अभिराम केलि-भवन का सम्मार्जन तथा मलयज मकरन्द से सिञ्चन करती हुई रस-समुद्र में निमग्न होऊँगी ?

प्रिया स्वरूप वर्णन २०२ शिखरिणीवृत्तम्

उदञ्चद्रोमाञ्च-प्रचय-खचितां वेपथुमतीं,
दधानां श्रीराधामतिमधुर लीलामय तनुम् ।
कदा वा कस्तूर्य्या किमपि रचयन्त्येव कुचयो-
र्विचित्रां पत्रालीमहमहह वीक्षे सुकृतिनी ॥

अहो ! कस्तूरी द्वारा अपने युगल कुचों पर अनिर्वचनीय विचित्र पत्रावली की रचना कर पुण्यवती होकर, मैं कब उन पुलकित रोमावली से शोभित, कम्पायमान्, अति मधुर लीला-मय तनु-धारिणी श्रीराधा का दर्शन करूंगी ?

प्रेम वैचित्य २०३ शिखरिणीवृत्तम्

क्षणं सीत्कुर्वन्ती क्षणमथ महावेपथुमतीं,
क्षणं श्याम श्यामेत्यमुमभिलपन्ती पुलकिता ।
महा प्रेमा कापि प्रमद मदनोद्दाम-रसदा,
सदानन्दा मूर्तिर्जयति वृषभानोः कुलमणिः ।।

कोई अनिर्वचनीय वृषभानु-कुल-मणि किशोरी ही सर्वोत्कृष्टता को प्राप्त हैं। जो सदा आनन्द की मूर्ति, महा प्रेम-स्वरूपा एवं प्रमद मदन के लिये भी श्रेष्ठतम् रस की प्रदाता हैं। (अत्यन्त प्रेम-वैचित्य के कारण) जो किसी क्षण सीत्कार करने लगती हैं, तो दूसरे ही क्षण अत्यन्त कम्पित होने लगती हैं फिर किसी क्षण "हे श्याम ! हे श्याम !! ऐसा प्रलाप करने लगती हैं, और पुलकित होने लगती हैं।"

सेवाभिलाषा २०४ शार्दूलविक्रीडितम्

यस्याः प्रेमघनाकृतेः पद-नख-ज्योत्स्ना भरस्नापित-
स्वान्तानां समुदेति कापि सरसा भक्तिश्चमत्कारिणी ।
सा मे गोकुल-भूप-नन्दनमनश्चोरी किशोरी कदा,
दास्यं दास्यति सर्व वेद-शिरसां यत्तद्रहस्यं परम् ।।

जिन प्रेम-घनाकृति किशोरी के पद-नख-ज्योत्स्ना-प्रवाह में स्नान करके (भक्त) हृदयों में कोई अनिर्वचनीय सरस चमत्कारिणी भक्ति सम्यक् रूप से उदय हो जाती है । वे गोकुल-भूप-नन्दन (श्रीलालजी) के भी मन का हरण करने वाली किशोरी मुझे अपना सर्व वेद-शिरोमणि (उपनिषद् का भी परम रहस्य-रूप) दास्य कब प्रदान करेंगी ?

अनन्यता २०५ शार्दूलविक्रीडितम्

कामं तूलिकया करेण हरिणा यालक्तकैरङ्किता,
नानाकेलि-विदग्ध गोप-रमणी-वृन्दे तथा वन्दिता।
या संगुप्ततया तथोपनिषदां हृद्येव विद्योतते,
सा राधा-चरण-द्वयी मम गतिर्लास्यैक-लीलामयी ॥

श्रीहरि के करकमलों द्वारा तूलिका से जिसमें यथेच्छ चित्रों की रचना की गई है। जो अनेक-अनेक केलि-चतुर गोप-रमणी-वृन्दों से वन्दित है एवं जो वेद-शिरोभाग (उपनिषदों) के हृदय में संगुप्त भाव से विद्यमान् है, वही नृत्य-लीलामयी श्रीराधा-चरण-द्वयी मेरी गति है।

अनन्यता २०६ शार्दूलविक्रीडितम्

सान्द्र प्रेम-रसौघ-वर्षिणि नवोन्मीलन्महामाधुरी,
साम्राज्यैक-धुरीण केलि-विभवत्कारुण्य कल्लोलिनि।
श्रीवृन्दावनचन्द्र-चित्त-हरिणी-बन्धु स्फुरद्वागुरे,
श्रीराधे नव-कुञ्ज-नागरि तव क्रीतास्मि दास्योत्सवैः ॥

हे घनीभूत प्रेम रस-प्रवाह-वर्षिणि ! हे नवीन विकसित महामाधुरी साम्राज्य की सर्व-श्रेष्ठ केलि-विभव-युक्त करुणा-कल्लोलिनि ! (सरिते !) हे श्रीवृन्दावन-चन्द्र के चित्त रूप मृगी-बन्धु (हरिन) के लिये प्रकाशमान् बन्धन-रूपे ! हे नवकुञ्ज-नागरि ! हे श्रीराधे ! मैं आपके दास्योत्सव में बिक चुकी हूँ।

दास्य चातुरी २०७ मन्दाक्रान्तावृत्तम्

स्वेदापूरः कुसुम चयनैर्दूरतः कण्टकाङ्को,
वक्षोजेऽस्यास्तिलक विलयो हंत घर्माम्भसैव।
ओष्ठः सख्या हिम-पवनतः सव्रणो राधिके ते,
क्रूरास्वेवं स्वघटितमहो गोपये प्रेष्ठसङ्गम् ॥

अहो ! श्रीराधिके !! आपने स्वमेव प्रियतम के सङ्गम-विहार की जो रचना की है; मैं उसे क्रूर (हास-परायण) सखियों से यह कहकर छिपाऊँगी, कि "दूर प्रदेश से पुष्प-चयन करने के कारण ही प्रिय-सखी के शरीर में स्वेद-प्रवाह है, आपके वक्षोजों को भी कण्टकों ने क्षत-विक्षत किया है और ओष्ठ पर जो व्रण हैं वह भी हिम-वायु के स्पर्श से ही उद्भूत हैं।"

नित्य-विलास २०८ मन्दाक्रान्तावृत्तम्

पातं-पातं पद कमलयोः कृष्णभृङ्गेण तस्या,
स्मेरास्येन्दोर्मुकुलित कुच द्वन्द्व हेमारविन्दम् ।
पीत्वा वक्त्राम्बुजमतिरसान्नूनमंतः प्रवेष्टु-
मत्यावेशान्नखरशिखया पाटचमानं किमीक्षे ॥

क्या मैं कभी ऐसा देखूँगी कि श्रीप्रिया-मुख-कमल का मधुपान करके अत्यन्त प्रेमावेश में भरे हुए श्रीकृष्ण-मधुकर निकुञ्ज-भवन के भीतर फिर प्रवेश पा लेने के लिये बार-बार श्रीराधा-चरण-कमलों में गिरकर प्रार्थना कर रहे होंगे ?

और [जब निकुञ्ज-प्रवेश हो जायगा, तब] उन मधुर हास्य-मयी चन्द्र-मुखी (श्रीराधा) के मुकुलित युगल-कुच रूप कनक-कमलों को अपनी नखर-शिखाओं से विदीर्ण करते होंगे ?

अभिलाषा २०९ शिखरिणीवृत्तम्

अहो तेमी कुञ्जास्तदनुपम रासस्थलमिदं,
गिरिद्रोणी सैव स्फुरति रति-रङ्गे-प्रणयिनी ।
न वीक्षे श्रीराधां हर-हर कुतोपीति शतधा-
विदीर्येन्त प्राणेश्वरि मम कदा हन्त हृदयम् ॥

अहो ! बड़े आश्चर्य की बात है ! यह सब वही कुंजें ! वही अनुपम रासस्थल तथा रति-रङ्ग-प्रणयिनी गिरि (गोवर्द्धन) गुहाएं हैं !! किन्तु हाय ! हाय !! बड़ा खेद है कि श्रीराधा कहीं नहीं दीखतीं ! हे प्राणेश्वरि ! ऐसा होने पर मेरा हृदय कब शतधा (शत खण्ड) होकर विदीर्ण हो जायगा ?

अभिलाषा २१० शिखरिणीवृत्तम्

इहैवाभूत्कुञ्जे नव-रति-कला मोहन तनो-
रहोऽत्रैवानृत्यद्दयित सहिता सा रसनिधिः ।
इति स्मारं-स्मारं तव चरित-पीयूष-लहरीं,
कदा स्यां श्रीराधे चकित इह वृन्दावन-भुवि ।।

अहो ! मोहन-तनु श्रीप्रियाजी की नव-रति-कला इसी कुञ्ज में अनुष्ठित हुई थी और उन रस-निधि ने अपने प्राण-प्यारे के साथ इसी स्थल पर नृत्य किया था ।" हे श्रीराधे ! इस प्रकार आपकी चरितामृत-लहरी का स्मरण कर-करके मैं कब इस वृन्दावन में चकित हो रहूँगी ?

प्रिया ऐश्वर्य २११ स्रग्धरावृत्तम्

श्रीमद्बिम्बाधरे ते स्फुरति नव सुधा-माधुरी-सिन्धु कोटि-
र्नेत्रान्तस्ते विकीर्णाद्भुत कुसुम धनुश्चण्ड सत्काण्डकोटिः ।
श्रीवक्षोजे तवाति प्रमद रस-कला-सार-सर्वस्व कोटिः,
श्रीराधे त्वत्पदाब्जात्स्रवति निरवधि प्रेम-पीयूष कोटिः ।।

हे श्रीराधे ! आपके श्रीसम्पन्न अधर-बिम्बों से नवीन अमृत-माधुरी के कोटि-कोटि सिन्धु स्फुरित होते रहते हैं । आपके नेत्र-कोणों से पुष्प-धन्वा कामदेव के कोटि-कोटि प्रचण्ड शर बिखरते रहते हैं । आपके उरोजों में अति प्रमत्त रति-कला का सार-सर्वस्व कोटि-कोटि प्रकार से शोभा पाता है और आपके श्रीचरण-कमलों से प्रेम-पीयूष-कोटि निरवधि रूप से प्रवाहित होता रहता है ।

तत्सुखी सेवा भाव २१२ मन्दाक्रान्तावृत्तम्

सान्द्रानन्दोन्मदरसघन प्रेम-पीयूष मूर्तेः,
श्रीराधाया अथ मधुपतेः सुप्तयोः कुञ्ज-तल्पे ।
कुर्वाणाहं मृदु-मृदु पदाम्भोज-सम्वाहनानि,
शय्यान्ते किं किमपि पतिता प्राप्त तन्द्रा भवेयम् ।।

निविड़ आनन्दोन्मद-रस के घनत्व से प्रकट प्रेमामृत-मूर्ति श्रीराधा और मधुपति श्रीलालजी के कुञ्ज-शय्या पर निद्रित हो जाने पर उनके अति कोमल पद-कमलों का सम्वाहन करते-करते मैं तन्द्रा प्राप्त होने पर शय्या के समीप ही क्या लुढ़क रहूँगी ?

अभिलाषा २१३ स्रग्धरावृत्तम्

राधा पादारविन्दोच्छलित नव रस प्रेम-पीयूष पुञ्जे,
कालिन्दी-कूल-कुञ्जे हृदि कलित महोदार माधुर्य्य-भावः ।
श्रीवृन्दारण्य-वीथी ललित रतिकला-नागरी तां गरीयो,
गम्भीरैकानुरागान्मनसि परिचरन् विस्मृतान्यः कदा स्याम् ।।

कितना सुन्दर यमुना तट ! श्रीराधा-चरण-कमलाङ्कित एवं नव-रस-प्रेमामृत पुञ्ज !! और उस कूल पर विराजमाना मैं ? परम सुन्दर, अत्यन्त उदार एवं मधुर भावना से भावित मेरा हृदय । कौनसी मेरी भावना ? श्रीवृन्दावन-वीथी-ललित-कला-चतुरा मैं और अतुल तथा गम्भीर अनुराग की एकमात्र मूर्ति श्रीस्वामिनीजी की वह मानसी सेवा परिचर्य्या । तो क्या होगा इससे ? क्या होगा ! मैं कब इस भावना से पूर्ण होकर अन्य सब कुछ भूल जाऊँगी ?

विप्रयोग शृङ्गार २१४ शिखरिणीवृत्तम्

अदृष्ट्वा राधांके निमिषमपि तं नागर-मणि,
तया वा खेलन्तं ललित ललितानङ्ग कलया ।
कदाहं दुःखाब्धौ सपदि पतिता मूर्च्छितवती,
न तामास्वास्यार्त्तां सुचिरमनुशोचे निज दशाम् ।।

श्रीराधा के साथ अति ललित कन्दर्प - कला - केलि करते हुए नागरमणि श्रीकृष्ण को श्रीराधा के अङ्क में निमिष-मात्र के लिये भी न देखकर मूर्छित-वती मैं दुःख सागर में एकदम पतित होकर उसी वियोगार्त्ता (श्रीप्रियाजी) को आश्वासन न दे सकने के कारण अपनी उस (विह्वल) दशा की कब चिर अनुशोचना करूँगी ?

श्रृङ्गार-भावना-पूर्ण मनोरथ २१५ मन्दाक्रान्तावृत्तम्

भूयोभूयः कमलनयने किं मुधावार्य्यतेऽसौ,
वाङ्मात्रेऽपि त्वदनुगमनं न त्यजत्येव धूर्त्तः ।
किञ्चिद्राधे कुरु कुच-तटी-प्रान्तमस्य त्वदीयं-
श्चक्षुर्द्वारा तमनुपतितं चूर्णतामेतु चेतः ।।

हे कमल नयने ! आप बार-बार केवल वाणी से ही इनका निवारण कर रही हैं और ये धूर्त्तराज आपका अनुगमन किसी प्रकार भी छोड़ते ही नहीं; अतएव आप कुछ ऐसा कीजिये, जिससे इनका मृदुल चित्त इनके ही चक्षु-मार्ग से आपके कुच-तटी-प्रान्त में अनुपतित होकर चूर्ण-चूर्ण हो जाय ।

श्रीवृन्दावन निष्ठा २१६ स्रग्धरावृत्तम्

किंवा नस्तैः सुशास्त्रैः किमथ तदुदितैर्वर्त्मभिः सद्गृहीतै-
र्यत्रास्ति प्रेम-मूर्त्तेर्नहि महिम-सुधा नापि भावस्तदीयः ।
किं वा वैकुण्ठ लक्ष्म्याप्यहह परमया यत्र मे नास्ति राधा,
किन्त्वाशाप्यस्तु वृन्दावन भुवि मधुरा कोटि जन्मान्तरेऽपि ।।

जिनमें प्रेम-मूर्ति श्रीराधा की महिमा-सुधा किंवा उनके भाव का वर्णन नहीं है उन सुशास्त्र समूहों से अथवा उन शास्त्र-विहित, साधुजन-गृहीत मार्ग-समूहों से भी हमको क्या प्रयोजन है ? अहा ! जहाँ हमारी श्रीराधा नहीं है उस वैकुण्ठ-शोभा से ही हमको क्या ? किन्तु कोटि जन्मान्तरों में भी श्रीवृन्दावन-भूमि के प्रति हमारी मधुर आशा बनी रहे, यही वाञ्छा है ।

प्रेम वैचित्य २१७ मन्दाक्रान्तावृत्तम्

श्याम-श्यामेत्यनुपम रसापूर्ण वर्णैर्जपन्ती,
स्थित्वा-स्थित्वा मधुर-मधुरोत्तारमुच्चारयन्ती ।
मुक्तास्थूलान्नयन गलितानश्रु-विन्दून्वहन्ती,
हृष्यद्रोमा प्रति-पदि चमत्कुर्वती पातु राधा ।।

श्रीकृष्ण-प्रेम से विह्वल होकर जो "श्याम श्याम !" इन अनुपम वर्णों का जाप करती हैं । कभी अपने बड़े-बड़े नयनों से स्थूल मुक्ता-माला के समान अश्रु-विन्दुओं का वर्षण (पतन) करती हैं तथा कभी प्रियतम-आगमन के सम्भ्रम से पद-पद पर चमत्कृत हो उठती हैं, वे हर्ष-पूर्ण पुलकित-रोम्नि श्रीराधा हमारी रक्षा करें।

प्रेम वैचित्य २१८ मन्दाक्रान्तावृत्तम्

ताट्टङ्मूर्तिर्व्रजपति-सुतः पादयोर्मे पतित्वा,
दन्ताग्रेणाथ धृत्वा तृणकममलान्काकुवादान्ब्रवीति ।
नित्यं चानुव्रजति कुरुते सङ्गमायोद्यमं चे-
त्युद्वेगं मे प्रणयिनि किमावेदयेयं नु राधे ।।

हे प्रणयिनि ! हे श्रीराधे ! मोहन-मूर्ति श्रीव्रजपति-कुमार (लालजी) मेरे चरणों में गिरकर एवं दन्ताग्र-भाग में तृण दबा कर निष्कपट चाटुकारी की वचनावली कहते हैं और निरन्तर ही मेरा अनुगमन भी करते हैं। उद्देश्य यह है कि मैं उनका आपके साथ सङ्गम करा दूँ किन्तु मैं (श्रीलालजी के इस प्रकार मेरे साथ व्यवहार-जन्य) अपने उद्वेग का आपसे क्या निवेदन करूँ ?

नित्य विहार २१९ शिखरिणीवृत्तम्

चलल्लीलागत्या कचिदनुचलद्धंस मिथुनं,
क्वचित्केकिन्यग्रेकृत नटन चन्द्रक्यनुकृति ।
लताश्लिष्टं शाखि प्रवरमनुकुर्वत् क्वचिदहो,
विदग्ध-द्वन्द्वं तद्रमत इह वृन्दावन-भुवि ।।

अहो ! वे चतुर युगल इस वृन्दावन-भूमि में कहीं लीला-पूर्ण गति द्वारा हंस-मिथुन का अनुसरण करके, कहीं मयूरी के आगे मयूर की नटन-भङ्गी की अनुकृति करके एवं कहीं लता-श्लिष्ट तरुवर का अनुकरण करके क्रीड़ा कर रहे हैं ।

नित्य विहार २२० मन्दाक्रान्तावृत्तम्

[1]व्याकोशेन्दीवराष्टा पद-कमल रुचा हारि कान्त्या स्वया-
यत् कालिन्दीयं सुरभिमनिलं शीतलं सेवमानम् ।
सान्द्रानंदं नव-नव रसं प्रोल्लसत्केलि-वृन्दं,
ज्योतिर्द्वन्द्वं मधुर-मधुरं प्रेम-कन्दं चकास्ति ॥

जिन्होंने अपनी कान्ति से विकसित इन्दीवर (नील-कमल) एवं स्वर्ण-कमल की शोभा को भी हरण कर लिया है और जो कालिन्दी के सुरभित एवं शीतल वायु का सेवन करते रहते हैं वह सघन आनन्द-मय, मधुराति-मधुर एवं प्रेम की उत्पत्ति-स्थान युगल-ज्योति श्रीवृन्दावन में विराजमान हैं ।

उपरोक्त भावानुसार ही २२१ पृथ्वीवृत्तम्

कदा मधुर सारिकाः स्वरस पद्यमध्यापय-
त्प्रदाय कर तालिकाः क्वचन् नर्त्तयत्केकिनम् ।
क्वचित् कनक वल्लरीवृत तमाल लीलाधनं,
विदग्ध मिथुनं तदद्भुतमुदेति वृन्दावने ॥

कभी मधुर - स्वरा सारिकाओं को निज रस सम्बन्धी पद्यों का अध्यापन कराते हुए, कभी ताली बजा-बजाकर मयूरों को नचाते हुए, तो कहीं कनक-लता से आवृत तमाल के लीला-धन से धनी चतुर युगल श्रीवृन्दावन में जगमगा रहे हैं ।

अभिलाषा २२२ शार्दूलविक्रीडितम्

पत्रालीं ललितां कपोल - फलके नेत्राम्बुजे कज्जलं,
रङ्गं बिम्बफलाधरे च कुचयोः काश्मीरजा-लेपनम् ।
श्रीराधे नव-सङ्गमाय-तरले पादांगुली-पंक्तिषु,
न्यस्यन्ती प्रणयादलक्तक-रसं पूर्णा कदा स्यामहम् ॥

१—पाठान्तर–व्याकोशेन्दीवरमथ रुचा हारि हेमारविन्दम् ।

हे श्रीराधे ! मैं आपके कपोल-स्थलों पर ललित पत्रावली, कमल-दल वत् नयनों में काजल, बिम्बा-फल सदृश अधरोष्ठों में ताम्बूल-रङ्ग एवं युगल-उरोजों में केशर का अनुलेपन करूं तथा हे नव-सङ्गमार्थ तरले ! चञ्चल रूपे ! आपकी पादांगुली-पंक्ति में प्रीति-पूर्वक सुरङ्ग लाक्षा-रस (जावक-रङ्ग) रञ्जित करके मैं कब पूर्ण मनोरथा बनूंगी ?

अति सख्य　　२२३　　शार्दूलविक्रीडितम्

श्रीगोवर्द्धन एक एव भवता पाणौ प्रयत्नाद्धृतो,
राधावर्ष्मणि हेम-शैल युगले दृष्टेऽपि ते स्याद्भयम् ।
तद्गोपेन्द्रकुमार मा कुरु वृथा गर्वं परीहासतः,
कर्ह्येवं वृषभानुनन्दिनि तव प्रेयांसमाभाषये ।

"हे गोपेन्द्र कुमार ! तुम व्यर्थ गर्व क्यों करते हो ! तुमने तो केवल एक ही गोवर्द्धन पर्वत को प्रयत्न-पूर्वक धारण किया था, किन्तु श्रीराधा तो अपने सुन्दर शरीर पर [एक नहीं दो-] दो हेम-शैल धारण कर रही हैं; जिन्हें देखकर ही तुम्हें भय लगता है।"

हे वृषभानु-नन्दिनि ! मैं कब परिहास-पूर्वक इस प्रकार आपके प्रियतम से कहूँगी ?

नित्य विलास　　२२४　　शार्दूलविक्रीडितम्

अनङ्ग जय मङ्गल ध्वनित किङ्किणी डिण्डिम,
स्तनादि वर ताडनैर्नखर-दन्त-घातैर्युतः ।
अहो चतुर नागरी नव-किशोरयोर्मञ्जुले,
निकुञ्ज-निलयाजिरे रतिरणोत्सवो जृम्भते ॥

अहो ! मञ्जुल निकुञ्ज-भवनाङ्गण में चतुर नागरी और नव किशोर का अनङ्ग-जय-मङ्गल-ध्वनित किङ्कणी का शब्द, स्तनादि का वर ताडन और नखर-दन्ताघात से युक्त रति-रणोत्सव प्रकाशित हो रहा है ।

हे श्रीराधे ! मैं आपके कपोल-स्थलों पर ललित पत्रावली, कमल-दल वत् नयनों में काजल, बिम्बा-फल सदृश अधरोष्ठों में ताम्बूल-रङ्ग एवं युगल-उरोजों में केशर का अनुलेपन करूं तथा हे नव-सङ्गमार्थ तरले ! चञ्चल रूपे ! आपकी पादांगुली-पंक्ति में प्रीति-पूर्वक सुरङ्ग लाक्षा-रस (जावक-रङ्ग) रञ्जित करके मैं कब पूर्ण मनोरथा बनूंगी ?

अति सख्य　　२२३　　शार्दूलविक्रीडितम्

श्रीगोवर्द्धन एक एव भवता पाणौ प्रयत्नाद्धृतो,
राधावर्ष्मणि हेम-शैल युगले दृष्टेऽपि ते स्याद्भयम् ।
तद्गोपेन्द्रकुमार मा कुरु वृथा गर्वं परीहासतः,
कर्ह्येवं वृषभानुनन्दिनि तव प्रेयांसमाभाषये ।

"हे गोपेन्द्र कुमार ! तुम व्यर्थ गर्व क्यों करते हो ! तुमने तो केवल एक ही गोवर्द्धन पर्वत को प्रयत्न-पूर्वक धारण किया था, किन्तु श्रीराधा तो अपने सुन्दर शरीर पर [एक नहीं दो-] दो हेम-शैल धारण कर रही हैं; जिन्हें देखकर ही तुम्हें भय लगता है ।"

हे वृषभानु-नन्दिनि ! मैं कब परिहास-पूर्वक इस प्रकार आपके प्रियतम से कहूँगी ?

नित्य विलास　　२२४　　शार्दूलविक्रीडितम्

अनङ्ग जय मङ्गल ध्वनित किङ्किणी डिण्डिम,
स्तनादि वर ताडनैर्नखर-दन्त-घातैर्युतः ।
अहो चतुर नागरी नव-किशोरयोर्मञ्जुले,
निकुञ्ज-निलयाजिरे रतिरणोत्सवो जृम्भते ।।

अहो ! मञ्जुल निकुञ्ज-भवनाङ्गण में चतुर नागरी और नव किशोर का अनङ्ग-जय-मङ्गल-ध्वनित किङ्कणी का शब्द, स्तनादि का वर ताडन और नखर-दन्ताघात से युक्त रति-रणोत्सव प्रकाशित हो रहा है ।

[श्यामसुन्दर ने कहा]—"हे श्रीदाम, सुबल, वृषभ, स्तोक-कृष्ण, अर्जुन आदि सखाओ ! तुमने क्या देखा ? मेरी चकित दृष्टि ने कुञ्ज में प्रवेश न करने पर भी जो देखा है, उसे सुनो—अपने सौन्दर्य्य-प्रवाह से निखिल-भुवन को डुबा देने वाली एक अवर्णनीय देवी ने दूर से ही अपने प्रिय सखा मुझ श्रीकृष्ण की अखिल वस्तुओं का अपहरण कर लिया है।"

राधा रूप दर्शन का प्रभाव २२८ **शिखरिणीवृत्तम्**

गता दूरे गावो दिनमपि तुरीयांशमभज-
द्वयं दातुं क्षांतास्तव च जननी वर्त्मनयना ।
अकस्मात्तूष्णीके सजल नयने दीन वदने,
लुठत्यस्यां भूमौ त्वयि नहि वयं प्राणिणिषवः ।।

[सखाओं ने कहा—हे श्याम सुन्दर !] हमारी गायें दूर निकल गयी हैं, दिन भी समाप्त हो आया है, हम लोग भी थकित से हो चुके हैं। उधर तुम्हारी जननी मार्ग पर दृष्टि लगाये बैठी हैं इधर अकस्मात् तुम्हारे पृथ्वी पर मूर्च्छित हो गिरने, चुप हो जाने एवं सजल नयन, दीन वदन हो जाने के कारण हम लोग भी निश्चय है कि अब प्राण नहीं धारण करना चाहते।

सौन्दर्य वर्णन २२९ **शार्दूलविक्रीडितम्**

नासाग्रे नव मौक्तिकं सुरुचिरं स्वर्णोज्ज्वलं बिभ्रती,
नानाभङ्गिरनङ्गरङ्ग विलसल्लीला तरङ्गावलिः ।
राधे त्वं प्रविलोभय व्रज-मणिं रत्नच्छटा-मञ्जरी,
चित्रोदञ्चित् कञ्चुकस्थि गतयोर्वक्षोजयोः शोभया ।।

हे राधे ! आपने अपनी नासिका के अग्रभाग में स्वर्णोज्ज्वल रुचिर नव-मौक्तिक धारण कर रखा है और आप [स्वयं] नाना-भङ्गि-विशिष्ट अनङ्ग-रङ्ग-विलास-युक्त लीला-तरङ्गों की अवलि हैं। आपके युगल वक्षोज रत्नच्छटा-युक्त चित्र-विचित्र कञ्चुकि से रुद्ध हैं—ढंके हैं। अब आप इनकी अनुपम शोभा से व्रज-मणि श्रीलालजी को सम्यक् प्रकार से प्रलुब्ध करें।

विचित्र मानदशा २३० शार्दूलविक्रीडितम्

अप्रेक्षे कृत निश्चयापि सुचिरं वीक्षेत दृक्कोणतो,
मौने दार्ढ्यमुपाश्रितापि निगदेत्तामेव याहीत्यहो।
अस्पर्शे सुधृताशयापि करयोर्धृत्वा वहिर्यापये-
द्राधायाः इति मानदस्थितिमहं प्रेक्षे हसन्ती कदा।।

यद्यपि [श्रीप्रियाजी ने प्रियतम की ओर] न देखने का निश्चय कर लिया है, फिर भी नेत्र-कोणों से [उनकी ओर] देर तक देखती ही रहती हैं। अहो! [आश्चर्य है] मौन का दृढ़ता-पूर्वक आश्रय लेकर भी "वहीं चले जाओ" इस प्रकार कह ही देती हैं एवं स्पर्श न करने का निश्चय करके भी उन्हें दोनों हाथ पकड़कर बाहर निकालती हैं। मैं हंसते-हंसते श्रीराधा के मान की इस दुःस्थिति को कब देखूंगी?

अभिलाषा २३१ शिखरिणीवृत्तम्

रसागाधे राधा हृदि-सरसि हंसः करतले,
लसद्वंशस्रोतस्यमृत-गुण-सङ्गः प्रति-पदम्।
चलत्पिच्छोत्तंसः सुरचितवतंसः प्रमदया,
स्फुरद्गुञ्जा-गुच्छः स हि रसिक-मौलिर्मिलतु माम्।।

अहा! जो श्रीराधा हृदय-रूप अगाध सरोवर के हंस हैं, जिनके करतल में मुरली शोभित है, जिस मुरली के छिद्रों से सदा अमृत-गुण (आनन्द) पद-पद पर झरता ही रहता है। जिनके सिर पर चञ्चल मयूर-चन्द्रिका तथा कानों में प्रमदाओं द्वारा सुरचित सुन्दर कर्ण-भूषण जगमगा रहे हैं एवं जिनके गले में प्रकाशमान् गुञ्जा-गुच्छ (माला) शोभित है वे रसिक-मौलि मुझे निश्चय ही मिलें।

बन-विहार २३२ शिखरिणीवृत्तम्

अकस्मात्कस्याश्चिन्नव - वसनमाकर्षति परां,
मुरल्या धम्मिल्ले स्पृशति कुरुतेन्या कर धृतिम्।
पतन्नित्यं राधा-पद-कमल-मूले व्रज-पुरे,
तदित्थं वीथीषु भ्रमति स महा लम्पट-मणिः।।

अहो ! वे सहसा किसी (गोपी) के नव-वसन को खींचने लगते हैं, तो दूसरी के केश-पाश को मुरली से स्पर्श करते हैं और किसी का हाथ ही पकड़ लेते हैं परन्तु वही श्रीराधा-पद-कमल-मूल में सदैव लोटते ही रहते हैं। इस प्रकार व्रज-पुर की गलियों में वे महा लम्पट-मणि (श्रीकृष्ण) भ्रमण करते रहते हैं।

समर्पण-भाव २३३ **शार्दूलविक्रीडितम्**

एकस्या रतिचौर एव चकितं चान्यास्तनान्ते करं,
कृत्वा कर्षति वेणुनान्य सदृशो धम्मिल्ल-मल्ली-स्रजम् ।
धत्तेन्या भुज-वल्लिमुत्पुलकितां संकेतयत्यन्यया,
राधायाः पदयोर्लुठत्यलममुं जाने महा लम्पटम् ।।

सखी ने कहा—"मैं इस महा लम्पट को खूब जानती हूँ। यह किसी एक सखी का तो रति-चोर है और किसी अन्य के स्तन पर चकित होकर कर-स्पर्श करता है। किसी अन्य सुनयनी की कबरी-स्थित मल्ली-माल को वेणु से खींचता है, किसी की पुलकित भुज-लता को पकड़ लेता—धारण करता है, तो किसी अन्य के सहित कुञ्जान्तर-प्रवेश का संकेत करता है। किन्तु श्रीराधा के चरणों में सम्पूर्ण-रूप से लोटता ही रहता है, (इसकी यहाँ एक नहीं चलती")।

वन-विहार २३४ **शिखरिणीवृत्तम्**

प्रियांसे निक्षिप्तोत्पुलक भुज-दण्डः क्वचिदपि,
भ्रमन्वृन्दारण्ये मद-कल करीन्द्राद्भुत-गतिः ।
निजां व्यंजन्नत्यद्भुत सुरत-शिक्षां क्वचिदहो,
रहः कुञ्जे गुञ्जा ध्वनित मधुपे क्रीडति हरिः ।।

अहो ! वे श्रीलालजी कभी तो अपनी प्रियतमा के स्कन्ध पर पुलकित भुजदण्ड स्थापित करके मदोन्मत्त करीन्द्र की भाँति अद्भुत गति से श्रीवृन्दावन में विचरण करते हैं और कभी मधुप-गुञ्जन-मुखरित एकान्त कुञ्ज में स्वकीय अत्यद्भुत सुरत-शिक्षा की अभिव्यञ्जना करते हुए क्रीड़ा करते हैं।

नित्य-विहार स्वरूप २३५ स्रग्धरावृत्तम्

दूरे सृष्ट्यादि वार्त्ता न कलयति मनाङ् नारदादीन्स्वभक्ता-
ञ्छ्रीदामाद्यैः सुहृद्भिर्न मिलति हरति स्नेह वृद्धिं स्वपित्रोः।
किंतु प्रेमैक सीमां परम रस-सुधा-सिन्धु-सारैरगाधां,
श्रीराधामेव जानन्मधुपतिरनिशं कुञ्ज-वीथीमुपास्ते ॥

श्रीश्यामसुन्दर ने सृष्टि आदि की चर्चा ही दूर कर दी है। वे नारदादि निज भक्तों का बिलकुल विचार भी नहीं करते। श्रीदामा आदि मित्र वर्ग के साथ भी नहीं मिलते और पिता-माता की स्नेह-वृद्धि भी नहीं चाहते। किन्तु वही मधुपति (श्रीकृष्ण) मधुर-रस-सुधा-सिन्धु की सारभूता अगाध प्रेम की एकमात्र सीमा श्रीराधा को ही जानकर अहर्निश कुञ्ज-वीथी में ही स्थित रहते हैं।

एकात्म-भाव २३६ स्रग्धरावृत्तम्

सुस्वादु सुरस तुन्दिलमिन्दीवर वृन्द सुन्दरं किमपि।
अधिवृन्दाटवि नन्दति राधा-वक्षोज भूषण-ज्योतिः ॥

अहो! सुस्वादनीय सुरस से पुष्ट अनिर्वचनीय नील-कमल-समूह के समान सुन्दर एवं श्रीराधा के वक्षोज की भूषण रूप कोई ज्योति श्रीवृन्दावन में आनन्दित हो रही है।

श्रीप्रिया स्वरूप महिमा २३७ शार्दूलविक्रीडितम्

कान्तिः कापि परोज्ज्वला नव मिलञ्छ्रीचन्द्रिकोद्भासिनी,
रामाद्यद्भुत वर्ण काञ्चित् रुचिर्नित्याधिकाङ्गच्छविः।
लज्जा-नम्रतनुः स्मयेन-मधुरा प्रीणाति केलिच्छटा,
सन्मुक्ता फल चारु हार सुरुचिः स्वात्मार्पणेनाच्युतम् ॥

जो नवीन प्राप्त हुई शोभामयी चन्द्रिका का प्रकाश करने वाली हैं एवं अद्भुत वर्ण की सहचरियों में जटित मणि - सदृश हैं । जिनकी अङ्गच्छबि प्रतिक्षण अधिक-अधिक बढ़ती ही रहती है और जो उज्ज्वल मुक्ताफल के सुन्दर हारों से दीप्तिमान् हैं । वे कोई लज्जा-नम्र-तनु एवं मन्द मुस्कान से मधुर केलिच्छटा-रूप परम उज्ज्वल अनिर्वचनीय कान्ति [श्रीराधा] अपने सर्वस्व-समर्पण के द्वारा अच्युत [श्रीलालजी] को सन्तुष्ट कर रही हैं अथवा आप स्वयं सन्तुष्ट हो रही हैं ।

उक्त भावानुसार ही २३८ इन्द्रवज्रावृत्तम्

यन्नारदाजेश शुकैरगम्यं वृन्दावने वञ्जुल मञ्जुकुञ्जे ।
तत्कृष्ण-चेतो हरणैक विज्ञमत्रास्ति किञ्चित्परमं रहस्यम् ।।

यहीं श्रीवृन्दावन में मनोहर बेतस्-कुञ्ज में नारद, अज, ईश और शुकदेव के द्वारा भी सर्वथा अगम्य, श्रीकृष्ण के चित्त का हरण करने में एकमात्र विज्ञ कोई परम रहस्य विद्यमान् है ।

अभिलाषा २३९ शार्दूलविक्रीडितम्

लक्ष्म्या यश्च न गोचरी भवति यन्नापुः सखायः प्रभोः,
सम्भाव्योपि विरञ्चि नारद शिव स्वायंभुवाद्यैर्नयः ।
यो वृन्दावननागरी पशुपति स्त्रीभाव लभ्यः कथं,
राधामाधवयोर्ममास्तु स रहो दास्याधिकारोत्सवः ।।

अहा ! जो लक्ष्मी के भी गोचर हैं जो प्रभु श्रीकृष्ण अपने सखाओं को भी प्राप्त नहीं हैं और जो ब्रह्मा, नारद, शिव, स्वायम्भुव आदि के लिये भी गम्य नहीं हैं, किन्तु वही वृन्दावन-नागरी गोपाङ्गनाओं के भावसे ही येन-केन प्रकार से लभ्य है । मुझ वही श्रीराधा-माधव का रहस्य दास्याधिकारोत्सव प्राप्त हो; (ऐसी वाञ्छा है ।)

अनन्यता-पूर्वक सर्वात्म-समर्पण २४० शार्दूलविक्रीडितम्

उच्छिष्टामृत भुक्तवैव चरितं श्रृण्वंस्तवैव स्मरन्,
पादाम्भोज रजस्तवैव विचरन्कुञ्जास्तवैवालयान् ।
गायन्दिव्य गुणांस्तवैव रसदे पश्यंस्तवैवाकृतिं,
श्रीराधे तनुवाङ्मनोभिरमलै सोहं तवैवाश्रितः ।।

हे श्रीराधे ! हे रसदे !! तुम्हारी ही उच्छिष्ट अमृत-भोजी मैं तुम्हारे ही चरित्रों का श्रवण करती हुई, तुम्हारे ही कुञ्जालय में विचरण करती हुई, तुम्हारे ही दिव्य गुण-गणों का गान करती हुई एवं तुम्हारी ही रसमयी आकृति (छवि) का दर्शन करती हुई, शुद्ध काय, मन और वचन-द्वारा केवल तुम्हारी ही आश्रिता हूँ ।

सेवा अन्वेषण २४१ स्रग्धरावृत्तम्

क्रीडन्मीनद्वयाक्ष्याः स्फुरदधरमणी-विद्रुम श्रोणि-भार,
द्वीपायामोन्तराल स्मर-कलभ-कटाटोप वक्षोरुहायाः ।
गम्भीरावर्त्तनाभेर्वहुलहरि-महा प्रेम-पीयूष सिन्धोः,
श्रीराधायाः पदाम्भोरुहपरिचरणे योग्यतामेव चिन्वे ।।

जिनके युगल-नेत्र मानो क्रीड़ा करते हुए मीन हैं । देदीप्यमान् अधर ही विद्रुम मणि हैं । पृथुल नितम्ब-द्वय ही दो द्वीप-विस्तार हैं । जिनके अन्तराल में काम-करि-शावक के कुम्भ-द्वय के आडम्बर (घेरे) के सदृश स्तन-द्वय हैं । जिनकी नाभि मानो गम्भीर भँवर है और जो श्रीहरि के विपुल-प्रेमामृत की सिन्धु स्वरूपा हैं । मैं उन श्रीराधा के युगल चरणारविन्दों की परिचर्य्या की केवल योग्यता का ही अन्वेषण करती हूँ ।

अभिलाषा २४२ शार्दूलविक्रीडितम्

मालाग्रन्थन-शिक्षया मृदु-मृदु श्रीखण्ड-निर्घर्षणा-
देशेनाद्भुत मोदकादि विधिभिः कुञ्जान्त सम्मार्जनैः ।
वृन्दारण्य रहः स्थलीषु विवशा प्रेमार्त्ति भारोद्गमात्-
प्राणेशं परिचारिकैः खलु कदा दास्या मयाधीश्वरी ।।

श्रीवृन्दावन के निभृत-निकुञ्ज में विराजमान् और अपने प्रियतम के प्रति प्रेमार्त्तिभार के उदय से विवश, अधीश्वरी श्रीराधा पुष्प-माला गूँथने की शिक्षा देकर, मृदु-मृदु चन्दन घिसने का आदेश देकर, अद्भुत मोदकादि की रचना का विधान करके एवं कुञ्ज-प्रान्त-पर्य्यन्त-सम्मार्जन की आज्ञा देकर परिचर्य्या-सम्बन्धी विस्तार-कार्य में मुझे कब दासी स्वीकार करेंगी ?

नित्य विहार २४३ शार्दूलविक्रीडितम्

प्रेमाम्भोधिरसोल्लसत्तरुणिमारम्भेण गम्भीर दृग्-
भेदाभङ्गि मृदुस्मितामृत नव ज्योत्स्नाचित श्रीमुखी ।
श्रीराधा सुखधामनि प्रविलसद्वृन्दाटवी-सीमनि,
प्रेयोङ्के रति-कौतुकानि कुरुते कन्दर्प-लीला-निधिः ॥

प्रेम-समुद्र-रस के उल्लास की तरुणिमा के आरम्भ के कारण जिनकी दृष्टि-भङ्गिमा गम्भीर बन रही है । भङ्गिमा-सहित मृदु मुस्कान-अमृत की नव ज्योत्स्ना से जिनका श्रीमुख शोभित हो रहा है वही कन्दर्प-लीला-निधि स्वरूपा श्रीराधा शोभायमान् वृन्दावन की सुख-धाम कुञ्ज में प्रियतम के अङ्क में रति-कौतुक कर रही हैं ।

प्रिया स्वरूप वर्णन २४४ शार्दूलविक्रीडितम्

शुद्ध प्रेम-विलास-वैभव-निधिः कैशोर शोभानिधि-
र्वैदग्धी मधुराङ्ग भङ्गिम-निधिर्लावण्य-सम्पन्निधिः ।
श्रीराधा जयतान्महारसनिधिः कन्दर्प-लीला-निधिः,
सौन्दर्य्यैक सुधा निधिर्मधुपतेः सर्वस्वभूतो निधिः ॥

अप्राकृत प्रेम-विलास-वैभव की निधि, कैशोर-शोभा की निधि, विदग्धता-पूर्ण मधुर अङ्ग-भङ्गिमा की निधि, लावण्य-सम्पत्ति की निधि, महारास की निधि, काम-लीला की निधि, सौन्दर्य्य की एकमात्र सुधा-निधि एवं मधुपति श्रीलालजी की सर्वस्वभूत निधि श्रीराधा की जय हो ।

प्रियतम-सम्मोहन चरित्र २४५ शार्दूलविक्रीडितम्

नीलेन्दीवरवृन्दकान्ति लहरी-चौरं किशोर-द्वयं-
त्वय्यै तत्कुचयोश्चकास्ति किमिदं रूपेण सम्मोहनम् ।
तन्मामात्म सखीं कुरु द्वितरुणीयं नौ दृढं श्लिष्यति,
स्वच्छायामभिवीक्ष्य मुह्यति हरौ राधा-स्मितं पातु नः ॥

श्रीप्रियाजी के युगल कुचों में अपनी परछाईयाँ देखकर श्रीलालजी ने कहा—'प्रिये ! तुम्हारे इन युगल कुचों में नील-कमल समूह की कान्ति-लहरी को भी चुराने वाले दो किशोर शोभा पा रहे हैं और उनके इस अनिर्वचनीय रूप से मेरा सम्मोहन हो रहा है । अतएव अब आप मुझको अपनी सखी बना लें; जिससे यह दोनों युवा हम दोनों तरुणियों का दृढ़ आलिङ्गन करेंगे ।' इस प्रकार श्रीहरि के मोह को देखकर प्रकट हुआ श्रीराधा का मृदु हास्य हमारी रक्षा करे ।

सम्भ्रम मान २४६ शार्दूलविक्रीडितम्

सङ्गत्यापि महोत्सवेन मधुराकारां हृदि प्रेयसः,
स्वच्छायामभिवीक्ष्य कौस्तुभ मणौ सम्भूत शोका-क्रुधा ।
[१]उत्क्षिप्य प्रिय पाणिमेव विनयेत्युक्त्वा गताया वहिः,
सख्यै सास्त्र निवेदतानि किमहं श्रोष्यामि ते राधिके ॥

हे श्रीराधे ! सुख-सङ्ग महोत्सव में सम्मिलित होने पर भी प्रियतम के हृदय-स्थित कौस्तुभ-मणि में अपना मधुराकार प्रतिबिम्ब देखकर उत्पन्न क्रोध और शोक के कारण प्रियतम के हाथ को दूर हटाकर एवं "अविनय" ऐसा कहकर बाहर गयी हुई आपका अश्रु - पूण निवेदन क्या मैं सुनूँगी ?

कवरी छवि वर्णन २४७ पृथ्वीवृत्तम्

महामणि वरस्रजं कुसुम - सञ्चयैरञ्चितं,
महा मरकत प्रभा ग्रथित मोहित श्यामलम् ।
महारस महीपतेरिव विचित्र सिद्धासनं,
कदा नु तव राधिके कबर-भारमालोकये ॥

१ — पाठान्तर-उत्क्षिप्ता प्रिय पाणि तिष्ठसि नयेत्युक्त्वा गताया वहिः ।

हे श्रीराधिके ! जो महामणियों की श्रेष्ठ माला एवं कुसुम-कलाप से शोभित है; जिसने महा मरकत मणि की प्रभा से ग्रथित होकर श्यामलता को भी मोहित कर रखा है और जो रसराज शृङ्गार का भी सिंहासन है, उस आपके कबरी-भार को मैं कब देखूंगी ?

वेणी-छवि **२४८** **मन्दाक्रान्तावृत्तम्**

मध्ये-मध्ये कुसुम-खचितं रत्न-दाम्ना निबद्धं,
मल्लीमाल्यैर्घन परिमलैर्भूषितं लम्बमानैः ।
पश्चाद्राजन्मणिवर कृतोदार माणिक्य-गुच्छं,
धम्मिल्लं ते हरि-कर-धृतं कर्हि पश्यामि राधे ॥

हे श्रीराधे ! बीच-बीच में पुष्पों द्वारा खचित; रत्नों की माला से बंधी हुई; सघन परिमल युक्त; मालती-माल-भूषित, लम्बमान्; पीछे के भाग में महामणि माणिक्य-गुच्छ से शोभित एवं श्रीहरि के हाथों द्वारा रचित आपकी वेणी को मैं कब देखूंगी ?

सीमन्त-वर्णन **२४९** **शिखरिणीवृत्तम्**

विचित्राभिर्भङ्गी विततिभिरहो चेतसि परं,
चमत्कारं यच्छंल्ललित मणि-मुक्तादि ललितः ।
रसावेशाद्वित्तः स्मर मधुर वृत्ताखिलमहो-
द्भुतस्ते सीमन्ते नव-कनक-पट्टो विजयते ॥

अहो श्रीराधे ! आपका सीमन्त-स्थित अद्भुत कनक-पट्ट ही सर्वतः जय-जयकार को प्राप्त है। वह सुन्दर कनक-पट्ट; ललित मणि-मुक्ताओं से जटित, रसावेश सम्पत्ति एवं समस्त काम-चरित्रों से पूर्ण है। स्वामिनि ! वह कनक-पट्ट आपकी विविध भङ्गिमाओं के द्वारा मानो हमारे चित्त को परम विस्मय और आनन्द प्रदान करता है।

सीमन्त-वर्णन २५० शिखरिणीवृत्तम्

अहोद्वैधीकर्त्तुं कृतिभिरनुरागामृत-रस-
प्रवाहैः सुस्निग्धैः कुटिल रुचिर श्याम उचितः ।
इतीयं सीमन्ते नव रुचिर सिन्दूर-रचिता,
सुरेखा नः प्रख्यापयितुमिव राधे विजयते ।।

हे श्रीराधे ! आपके सीमन्त में यह नव-रुचिर सिन्दूर-रचित सुरेखा हमको मानो यह विज्ञापित करने के लिये ही विजय को प्राप्त हो रही है कि अनुरागामृत-रस के सुस्निग्ध प्रवाह रूप क्रिया-विशेष के द्वारा कुटिल एवं रुचिर श्याम को द्विधा करना ही उचित है ।

परस्पर प्रेम आसक्ति २५१ शिखरिणीवृत्तम्

चकोरस्ते वक्त्रामृत किरण विम्बे मधुकर-
स्तव श्रीपादाब्जे जघन पुलिने खञ्जनवरः ।
स्फुरन्मीनो जातस्त्वयि रस-सरस्यां मधुपतेः,
सुखाटव्यां राधे त्वयि च हरिणस्तस्य नयनम् ।।

हे श्रीराधे ! उन मधुपति श्रीलालजी के नयन तुम्हारे मुख-चन्द्र के चकोर, (तुम्हारे) श्रीचरण-कमल के मधुकर जघन-पुलिन के श्रेष्ठ खञ्जन, अहो ! आपकी रस सरसी (कुण्डिका) के चञ्चल मीन और [आपके] सुख अटवी रूपी श्रीवपु के हरिण हो रहे हैं ।

विहार-व्याप्ति २५२ मन्दाक्रान्तावृत्तम्

स्पृष्ट्वा स्पृष्ट्वा मृदु - करतलेनाङ्गमङ्गं सुशीतं,
सान्द्रानन्दामृत रस-हृदे मज्जतो माधवस्य ।
अङ्के पङ्केरुह सुनयना प्रेम-मूर्त्तिः स्फुरन्ती,
गाढ़ाश्लेषोन्नमित चिबुका चुम्बिता पातु राधा ।।

जिनके सुशीतल अङ्ग प्रत्यङ्गों को बारम्बार अपने करतलों से स्पर्श करके माधव घनीभूत आनन्दामृत-रस-समुद्र में मग्न हो जाते हैं, जो अपने प्रियतम के अङ्क (गोद) में विराजमान हैं, गाढ़ालिङ्गन के कारण जिनका सुन्दर चिबुक कुछ ऊपर उठ रहा है, प्रियतम ने जिसका चुम्बन भी कर लिया है, इस कारण जो और भी चञ्चल हो उठी हैं; वह कमल-दल सुलोचना प्रेम-मूर्त्ति श्रीराधा हमारी रक्षा करें।

अभिलाषा २५३ शिखरिणीवृत्तम्

सदा गायं-गायं मधुरतर राधा-प्रिय-यशः,
सदा सान्द्रानन्दा नव रसद राधापति-कथाः।
सदा स्थायं-स्थायं नव निभृत राधा-रति-वने,
सदा ध्यायं-ध्यायं विवश हृदि राधा-पद-सुधाः॥

मैं श्रीराधा के नव-निभृत केलि-कुञ्ज-कानन में स्थित रहती हुई, सदा मधुरतर श्रीराधा के प्रिय यशों का तथा घनीभूत नव-नव आनन्द-रस-दायी श्रीराधापति की कथाओं का बारम्बार गान करती हुई एवं श्रीराधा-पद-सुधा का सर्वदा ध्यान करती हुई कब विवश हृदय होऊंगी ?

प्रेम-वैचित्य-दशा २५४ मन्दाक्रान्तावृत्तम्

श्याम-श्यामेत्यमृत-रस संस्रावि वर्णाञ्जपन्ती,
प्रेमौत्कण्ठ्यात्क्षणमपि स रोमाञ्चमुच्चैर्लपन्ती।
सर्वत्रोच्चाटनमिव गता दुःख-दुःखेन पारं,
काङ्क्षत्यह्नो दिनकरमलं क्रुध्यती पातु राधा॥

[प्रियतम-वियोग के भ्रम से कभी तो] अनुपम रस-स्रावी शब्द— "हे श्याम ! हे श्याम !!" ऐसे जपती हैं, तो दूसरे ही क्षण प्रेमोत्कण्ठा से रोमाञ्च सहित हो जाती हैं और उच्च-स्वर से आलाप करने लगती हैं। चित्त सब ओर से उच्चाटन को प्राप्त है और बहुत दुःख के साथ दिन के व्यतीत हो जाने की वाञ्च्छा करती हैं एवं जो [कभी-कभी] सूर्य के प्रति अत्यधिक क्रोधित हो उठती हैं। ऐसी [विह्वला] श्रीराधा हमारी रक्षा करें।

प्रेम-वैचित्र्य-दशा २५५ शिखरिणीवृत्तम्

कदाचिद्गायन्ती प्रियरतिकला वैभवगतिं,
कदाचिद्ध्यायन्तीप्रिय सह भविष्यद्विलसितम् ।
अलं मुञ्चामुञ्चेत्यति मधुर मुग्ध प्रलपितै-
र्नयन्ती श्रीराधा दिनमिह कदा नन्दयतु नः ॥

कभी प्रियतम की रति-कला-वैभव-गति (लीला-विलास) का गान करती हैं, तो कभी प्रियतम के सङ्ग होने वाले भावी विलास का ध्यान करती हैं। फिर कभी "छोड़ो ! मुझे छोड़ो ? अरे बस; हो गया ??" इस प्रकार मधुर एवं मुग्ध प्रलाप करती हुई दिन व्यतीत करती हैं। वे श्रीराधा हमें कब आनन्दित करेंगी ?

प्रार्थना २५६ मन्दाक्रान्तावृत्तम्

श्रीगोविन्द व्रज-वर-वधू-वृन्द-चूडामणिस्ते,
कोटि प्राणाभ्यधिक परम प्रेष्ठ पादाब्जलक्ष्मीः ।
कैङ्कर्य्येणाद्भुत नव रसेनैव मां स्वीकरोतु,
भूयोभूयः प्रति मुहुरधिस्वामि सम्प्रार्थयेहम् ॥

हे सर्वश्रेष्ठ स्वामिन् ! हे श्रीगोविन्द ! मैं आपसे बारम्बार यही प्रार्थना करती हूँ कि व्रज-वर-वधू-वृन्द-चूड़ामणि [श्रीप्रियाजी] जिनकी पादाब्ज-लक्ष्मी आपको अपने कोटि-कोटि प्राणों से भी अधिक प्रिय है, मुझे अपने अद्भुत नित्य-नवीन कैङ्कर्य्य में स्वीकार करें।

दासत्व-याचना २५७ शिखरिणीवृत्तम्

अनेन प्रीता मे दिशतु निज कैङ्कर्य्य-पदवीं,
दवीयो दृष्टीनां पदमहह राधा सुखमयी ।
निधायैवं चित्ते कुवलय-रुचिं वर्हं-मुकुटं,
किशोरं ध्यायामि द्रुत कनकपीतच्छवि पटम् ॥

अहो ! यह जो मैं तरल-सुवर्ण-सदृश पीतच्छवि वसन एवं मयूर-पिच्छ-रचित मुकुट-धारी नीलेन्दीवर-कान्ति किशोर श्रीकृष्ण को अपने हृदय में धारण करके उनका ध्यान करती हूँ; इससे सुखमयी श्रीराधा प्रसन्न होकर दूर-दर्शी लोगों के पद-स्वरूप अपनी कैङ्कर्य्य-पदवी मुझे प्रदान करें।

अभिलाषा २५८ शार्दूलविक्रीडितम्

ध्यायंस्तंशिखिपिच्छमौलिमनिशं तन्नाम-सङ्कीर्त्तय-
न्नित्यं तच्चरणाम्बुजं परिचरन्तन्मन्त्रवर्य्यं जपन्।
श्रीराधा-पद-दास्यमेव परमाभीष्टं हृदा धारयन्,
कर्हि स्यां तदनुग्रहेण परमोद्भूतानुरागोत्सवः॥

उन शिखि-पिच्छ-मौलिधारी श्रीकृष्ण का ध्यान करती हुई, उनके नामों का कीर्त्तन करती हुई, उनके चरण-कमलों की नित्य-परिचर्य्या करती हुई, उनके मन्त्रराज का जप करती हुई एवं अपना परम अभीष्ट—श्रीराधा-पद-दास्य अपने हृदय में धारण करती हुई, मैं कब उनके अनुग्रह से परम अद्भुत अनुरागोत्सव-शाली होऊंगी ?

अभिलाषा २५९ शार्दूलविक्रीडितम्

श्रीराधा-रसिकेन्द्र रूप गुणवद्गीतानि संश्रावयन्,
गुञ्जा मञ्जुल हार-वर्ह-मुकुटाद्यावेदयंश्चाग्रतः।
श्याम-प्रेषित पूग-माल्य नव गन्धाद्यैश्च संप्रीणयं-
स्त्वत्पादाब्ज नखच्छटा रस हृदे मग्नः कदा स्यामहम्॥

श्रीराधा और रसिकेन्द्र के रूप गुणादि समन्वित गीत-समूह का श्रवण करती हुई, उन [श्रीलालजी] के आगे सुन्दर गुञ्जाहार और मोर-मुकुटादि समर्पण करती हुई एवं श्याम-सुन्दर द्वारा प्रेषित सुपारी, माला, नवीन-गन्ध (इत्रादि) के द्वारा आपको प्रसन्न करती हुई, मैं कब आपके चरण-कमल की नखच्छटा रूप रस-सरसी में मग्न होऊँगी ?

वृन्दावन महिमा २६० मन्दाक्रान्तावृत्तम्

क्वासौ राधा निगमपदवी दूरगा कुत्र चासौ,
कृष्णस्तस्याः कुच-कमलयोरन्तरैकान्त वासः।
क्वाहं तुच्छः परममधमः प्राण्यहो गर्ह्य कर्मा,
यत्तन्नाम स्फुरति महिमा एष वृन्दावनस्य ।।

कहाँ तो निगम पदवी से सुदूर वर्त्तमान् श्रीराधा ? और कहाँ उनके युगल-कुच-कमलों के मध्य में एकान्त भाव से निवास करने वाले श्रीकृष्ण ? अहो ! और कहाँ मैं अति अधम गर्हित-कर्मा, तुच्छ प्राणी ? इतने पर भी जो उनके नाम का स्फुरण होता है, वह निश्चय ही श्रीवृन्दावन की ही महिमा है।

वाञ्छा २६१ मन्दाक्रान्तावृत्तम्

वृन्दारण्ये नव रस-कला-कोमल प्रेम-मूर्त्तेः,
श्रीराधायाश्चरण - कमलामोद - माधुर्य्य - सीमा।
राधां ध्यायन् रसिक-तिलकेनात्त केली-विलासां,
तामेवाहं कथमिह तनुं न्यस्य दासी भवेयम् ।।

जिन्होंने रसिक-तिलक श्रीलालजी के साथ केलि-विलास करना स्वीकार किया है, उन नव-रस-कला-कोमल-मूर्त्ति श्रीराधा का ध्यान करती हुई क्या मैं किसी प्रकार इस वृन्दावन में अपने शरीर को त्याग कर उनके चरण-कमल के आमोद-माधुर्य्य की अवधि-स्वरूपा दासी होऊँगी ?

निवेदन २६२ मन्दाक्रान्तावृत्तम्

हा कालिन्दि त्वयि मम निधिः प्रेयसा क्षालितोद्भूत्,
भो भो दिव्याद्भुत तरुलतास्त्वत्कर-स्पर्श भाजः।
हे राधायाः रति-गृह-शुकाः हे मृगाः हे मयूराः,
भूयो भूयः प्रणतिभिरहं प्रार्थये वोनुकम्पाम् ।।

हा कालिन्दि ! आप मेरी निधि-स्वरूपा स्वामिनि तथा प्रियतम से क्षालित हुई हैं; अर्थात् आप में ही उन्होंने जल-विहार किया है। अहा ! दिव्य एवं अद्‌भुत तरुलता गण ! तुम उनके सुकोमल कर-स्पर्श-भाजन हो। श्रीराधा-रति-गृह-निवासी हे शुको ! हे मृगो ! हे मयूरो !! मैं बारम्बार आपकी अनुकम्पा-प्राप्ति के लिये प्रणति-पूर्वक प्रार्थना करती हूँ।

कृपा-याचना २६३ शिखरिणीवृत्तम्

वहन्ती राधायाः कुच-कलश-काश्मीरजमहो,
जलक्रीडा वेशाद्गलितमतुल प्रेम-रसदम्।
इयं सा कालिन्दी विकसित नवेन्दीवर रुचि-
रसदा[1] मन्दीभूतं हृदयमिह सन्दीपयतु मे ॥

अहो ! जो जल-क्रीड़ा के आवेश से प्रक्षालित एवं अनुपम कुच कलशों में लगी हुई प्रेम-रस-प्रदायिनि केशर को वहन (प्रवाहित) करती रहती हैं; वही यह प्रफुल्लित नील-कमल की शोभा वाली कलिन्द-नन्दिनी यमुना मेरे इस मन्दीभूत हृदय को सदा सन्दीपित (प्रकाशित) करें।

वृन्दावन महिमा २६४ शार्दूलविक्रीडितम्

सद्योगीन्द्र सुदृश्य सान्द्र रसदानन्दैक सन्मूर्त्तयः,
सर्वेप्यद्‌भुत सन्महिम्नि मधुरे वृन्दावने सङ्गताः।
ये क्रूरा अपि पापिनो न च सतां सम्भाष्य दृष्याश्चये,
सर्वान्वस्तुतया निरीक्ष्य परम स्वाराध्य बुद्धिर्मम ॥

अद्‌भुत महिमा-पूर्ण मधुर वृन्दावन से जिनका सङ्ग है, वे भले ही क्रूर, पापी और सज्जनों के दर्शन-सम्भाषण के अयोग्य व्यक्ति हों किन्तु वे भी योगीन्द्र-गणों के सुन्दर दर्शनीय, सघन रसदायी और एकमात्र आनन्द की मूर्ति हैं। उनको वस्तुतया—उनके वास्तविक रूप में—देखकर उनके प्रति मेरी परम आराध्य बुद्धि है।

---

१ पाठान्तर—च्छटा।

वृन्दावन महिमा २६५ शार्दूलविक्रीडितम्

यद्राधा-पद-किङ्करी-कृत हृदां सम्यग्भवेद्गोचरं,
ध्येयं नैव कदापि यद्धृदि विना तस्याः कृपा-स्पर्शतः ।
यत्प्रेमामृत-सिन्धु-सार रसदं पापैकभाजामपि,
तद्वृन्दावन दुष्प्रवेश महिमाश्चर्य्यं हृदिस्फूर्जतु ॥

जो श्रीराधा-चरणों में किङ्करी-भाव-पूर्ण हृदय वालों के लिये ही सम्यक् प्रकार से दृष्टि-गत हो सकता है, जो उन [श्रीराधा] की कृपा के स्पर्श बिना कदापि हृदय में नहीं आता एवं जो एकमात्र पाप-भाजनों—महापापियों—को भी प्रेमामृत-सिन्धु-सार-रस का दान करता है ! उस वृन्दावन की आश्चर्य्यमयी दुष्प्रवेश-महिमा मेरे हृदय में स्फुरित हो ।

अभिलाषा २६६ शार्दूलविक्रीडितम्

राधाकेलि कलासु साक्षिणि कदा वृन्दावने पावने,
वत्स्यामि स्फुटमुज्वलाद्भुत रसे[1] प्रेमैक-मत्ताकृतिः ।
तेजो-रूप निकुञ्ज एव कलयन्नेत्रादि पिण्डस्थितं,
तादृक्स्वोचित दिव्य कोमल वपुः स्वीयं समालोकये ॥

मैं कब प्रेम-विवशाकृति होकर श्रीराधा-केलि के साक्षी प्रकट-उज्ज्वल-अद्भुत-रस-पूर्ण एवं पवित्र वृन्दावन में निवास करूंगी ? तथा नेत्र-पिण्डों में स्थित तेजोमय निकुञ्ज की भावना करती हुई उसी के अनुसार उपयोगी अपने कोमल वपु का कब अवलोकन करूंगी ?

एकान्त-निष्ठा २६७ रथोद्धतावृत्तम्

यत्र-यत्र मम जन्म कर्मभिर्नारकेऽथ परमे पदेऽथवा ।
राधिका-रति-निकुञ्ज-मण्डली तत्र-तत्र हृदि मे विराजताम् ॥

१ पाठान्तर—रसं ।

कर्मवशतः नरक में अथवा स्वर्ग में जहाँ - जहाँ मेरा जन्म हो अथवा परम पद में ही क्यों न चला जाऊँ किन्तु वहाँ-वहाँ श्रीराधा-केलि-कुञ्ज-मण्डली [श्रीप्रिया, प्रियतम, सहचरि और वृन्दावन] मेरे हृदय में विराजमान् रहे ।

दैन्य भाव २६८ शार्दूलविक्रीडितम्

क्वाहं मूढमतिः क्व नाम परमानन्दैक सारं रसः[1],
श्रीराधा-चरणानुभावकथया निस्यन्दमाना गिरः ।
लग्नाः कोमल कुञ्ज पुञ्ज विलसद्वृन्दाटवी-मण्डले,
क्रीडच्छ्रीवृषभानुजा-पद-नख-ज्योतिश्छटा प्रायशः ॥

कहाँ तो मूढ़-मति मैं ? और कहाँ परमानन्द का भी सार और रस-रूप उनका श्रीनाम ? तथापि श्रीराधा के चरणानुभाव-कथन-द्वारा दोलायमान् मेरा वाक्य-समूह, कोमल कुञ्ज-पुञ्ज विलसित श्रीवृन्दावन में संलग्न और प्रायशः (अधिकतर) क्रीड़ा-परायण श्रीवृषभानु-नन्दिनी की पद-नख-ज्योति की छटा से युक्त है ।

प्रार्थना २६९ शार्दूलविक्रीडितम्

श्रीराधे श्रुतिभिर्बुधैर्भगवताप्यामृग्यसद्वैभवे,
स्वस्तोत्र स्वकृपात्र एव सहजो योग्योप्यहं कारितः ।
पद्येनैव सदापराधिनि महन्मार्गं विरुद्धचत्वदे-
काशेस्नेह जलाकुलाक्षि किमपि प्रीतिं प्रसादी कुरु ॥

हे श्रीराधे ! आपका वैभव श्रुतियों, बुधजनों एवं स्वयं भगवान् के लिये भी अन्वेषणीय है किन्तु फिर भी आपकी कृपा के द्वारा आपका स्तोत्र पद्य रूप करने के लिये मैं सहज योग्य बना दिया गया हूँ, अतएव हे स्नेह-जल-पूर्ण आकुल-नयनि ! सदापराधी एवं महत् मार्गों का भी विरोध करके एक मात्र तुम्हारी ही आशा रखने वाले मुझ पर अपनी अनिर्वचनीय कृपा-प्रीति का प्रसाद दीजिये ।

---

१ पाठान्तर—रसं ।

अद्भुतानन्द लोभश्चेन्नाम्ना 'रस-सुधा-निधिः' ।
स्तवोयं कर्ण-कलशैर्गृहीत्वा पीयतां बुधाः ॥

हे बुधजनो ! यदि आपको अद्भुत आनन्दोपभोग का लोभ हो तो इस "रस - सुधा - निधि" नामक स्तव को प्राप्त करके — [ग्रहण करके] कर्ण-कलशों से पान कीजिये ।

इति श्रीवृन्दावनेश्वरी-चरणकमल-कृपावलम्ब-जृम्भित
महाप्रभु श्रीहित हरिवंशचन्द्र गोस्वामिना विरचितं
'रस-सुधा-निधिः' स्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

इस प्रकार श्रीवृन्दावनेश्वरी—श्रीराधा-चरण-कमल कृपा के आश्रय से
कल्लोलमान् महाप्रभु श्रीहित हरिवंशचन्द्र गोस्वामिपाद द्वारा
विरचित यह 'रस-सुधा-निधि' नामक स्तोत्र
सम्पूर्ण हुआ ।



❀ श्रीराधे ❀

अकारादि क्रमानुगत श्लोक-सूची

ख

ग

च

ज



❀ श्रीहित हरिवंशचन्द्रो जयति ❀
❀ श्रीहित राधावल्लभो जयति ❀

श्रीयमुनाष्टकम्

(भावानुवाद-सहित)

अनुवादक—स्वामी श्रीहितदास 'रसिक पद-रेणु'

१

व्रजाधिराज-नन्दनाम्बुदाभ गात्र चन्दना-
नुलेप गन्ध वाहिनीं भवाब्धि-बीजदाहिनीम् ।
जगत्त्रये यशस्विनीं लसत्सुधा पयस्विनीं,
भजे कलिन्द-नन्दिनीं दुरन्त मोह भञ्जिनीम् ।।

जो व्रजराज-नन्दन श्रीकृष्ण के नव-जल-धर वत् कान्तिमान वपु में अनुलेपित चन्दन गन्ध का वहन करती हैं, जो आवागमन रूप भव सागर के बीज का दहन कर देती हैं, जिनका सुयश त्रिलोक-विख्यात् है एवं जो मानों सुधा-धारा से ही लसित हैं—शोभित हैं। उन दुरन्त मोह (जिसका अन्तिम परिणाम बड़ा कष्टमय है) का भञ्जन (नाश) करने वाली कलिन्द-गिरि-नन्दिनि श्रीयमुना का मैं भजन करता हूँ।

२

रसैकसीम राधिकां पदाब्ज-भक्ति-साधिकां,
तदङ्ग-राग - पिञ्जर प्रभाति पुंज मञ्जुलाम् ।
स्वरोचिषाति शोभितां कृतां जनाधिगञ्जनां,
भजे कलिन्द-नन्दिनीं दुरन्त मोह-भञ्जिनीम् ।।

जो रस की एक मात्र अवधि श्रीराधिका-चरण कमल-भक्ति की साधिका हैं- प्राप्ति करा देने वाली हैं और उन्हीं श्रीराधिका के अङ्ग-राग का बहन करने से अत्यन्त मञ्जुल प्रभा-पुञ्ज को प्राप्त हैं। जो स्वयं स्वप्रभा से अति शोभित हैं तथा अपने (सेवन करने वाले) जनों के पूर्व-कृत पापों का भली प्रकार अधिगञ्जन करने में जो बहुत ही कुशल हैं मैं उन कठिनतम मोह का भञ्जन करने वाली कलिन्द-गिरि-नन्दिनि श्रीयमुना का भजन करता हूँ।

३

व्रजेन्द्र-सूनु-राधिका हृदि प्रपूर्यमाणयो-
र्महा रसाब्धि पूरयोरिवाति तीव्र वेगतः ।
बहिः समुच्छ्वलन्नव प्रवाह रूपिणीमहं,
भजे कलिन्द नन्दिनीं दुरन्त-मोह-भञ्जिनीम् ।।

कलिन्द-नन्दिनि का यह प्रवाह क्या है ? मानों व्रजेन्द्र-नन्दन श्रीकृष्ण और वृषभानु-नन्दिनि श्रीराधिका का महारस (प्रेम) पूर्ण महासागर रूप हृदय ही बाहर उछल-उछल कर नवीन प्रवाह-रूप में अति तीव्र वेग रूप से बह चला है। अहो ! मैं ऐसी रस-प्रवाह रूपिणी कलिन्द-नन्दिनि का भजन करता हूँ जो दुरन्त-मोह का भी भञ्जन कर देती हैं।

४

विचित्र रत्न-बद्ध सत्तट-द्वयो श्रियोज्ज्वलां,
विचित्र हंस-सारसाद्यनन्त पक्षि-संकुलाम् ।
विचित्र मीन-मेखलां कृताति दीन-पालितां,
भजे कलिन्द-नन्दिनीं दुरन्त मोह भञ्जिनीम् ।।

जिसके दोनों तट चित्र-विचित्र रत्नों से आवद्ध हैं। उन रत्नों की उज्ज्वल कान्तिश्री से दिव्य प्रकाश चारों ओर बिखर रहा है। साथ ही साथ दोनों तट विचित्र-विचित्र हँस सारस आदि अनन्त पक्षियों के समूह से परिपूर्ण हैं। जल में विहार करती हुई विचित्र-विचित्र मछलियाँ ही मानों आपकी मेखला (करधनी) की शोभा प्राप्त करा रही हैं। जो अधम से अधम दीनजनों का भी पालन करती हैं मैं उन दुरन्त मोह का भी भञ्जन करने वाली कलिन्द-नन्दिनि यमुना का भजन करता हूँ।

५

वहन्तिकां श्रियां हरेर्मुदा कृपा-स्वरूपिणीं,
विशुद्ध भक्तिमुज्ज्वलां परे रसात्मिकां विदुः ।
सुधा श्रुतित्वलौकिकीं परेशवर्ण-रूपिणीं,
भजे कलिन्द-नन्दिनीं दुरन्त मोह-भञ्जिनीम् ।।

जो श्रीलालजी की अनिर्वचनीय कान्ति-श्री का मोद-मोद से वहन करती हैं, जो साक्षात् कृपा-स्वरूपिणी हैं। और तो क्या, इन्हें यों समझिये कि परम रसमयी उज्ज्वल एवं विशुद्ध भक्ति यही हैं (जो जल के रूप में) अलौकिक सुधा का ही निर्झरण करती रहती हैं। अहा ! जिनका श्याम वर्ण परम प्रभु श्रीकृष्ण के श्याम-वपु के सदृश है। मैं तो इन्हीं दुरन्त मोह-भञ्जिनि कलिन्द-सुता श्रीयमुना जी का भजन करता हूँ।

६

सुरेन्द्रवृन्द वन्दितां रसादधिष्ठते वने,
सदोपलब्ध माधवाद्भुतैक सद्दशोन्मदाम् ।
अतीव विह्वलामिवच्चलतरङ्ग दोर्लतां,
भजे कलिन्द नन्दिनीं दुरन्त मोह भञ्जिनीम् ।।

ये दुरन्त मोह भञ्जिनि कलिन्द तनया सुरेन्द्र-वृन्द-वन्दित हैं और सदा रसाधिष्ठान् श्रीवृन्दावन में शोभित रहती-विराजती हैं। इस रस-अधिष्ठान् श्रीवृन्दावन में सर्व-शिरोमणि श्रीमाधव ने किसी अत्यद्भुत रस की उपलब्धि की है और वे उसी रस में सदा उन्मद रहे आते हैं, बस, उन्हीं माधव के सदृश ये यमुना भी रसोन्मदा हैं। इनकी चंचल तरंगें क्या हैं ? मानों ये अति विह्वल-भाव से अपनी दोनों भुज-लताओं को उठा-उठाकर आनन्दोल्लास प्रकट कर रही हैं। मैं इन्हीं कलिन्द-नन्दिनि का भजन करता हूँ।

७

प्रफुल्ल पङ्कजाननां लसन्नवोत्पलेक्षणां,
रथाङ्गनां युग्मकस्तनीमुदार हंसिकाम् ।।
नितम्ब चारु रोधसां हरेः प्रिया रसोज्ज्वलां,
भजे कलिन्द-नन्दिनीं दुरन्त मोह-भञ्जिनीम् ।।

आप (श्रीयमुनाजी) के अन्तरवर्ती प्रफुल्लित पङ्कज ही मानों आपका मुख-कमल है और शोभाशाली नील उत्पल ही सुन्दर नयन हैं। जल में विहार करते हुए युगल-चक्र वाक-दम्पति ही मानों आपके युगल स्तन-मण्डल हैं। अहा ! ये दुरन्त मोह-भंजिनि कलिन्द-सुता श्रीहरि और उनकी प्रियतमा श्रीराधिका के रस से परमोज्ज्वला हो रही हैं। मैं इन्हीं का भजन करता हूँ।

८

समस्त वेद-मस्तकैरगम्य-वैभवां सदा,
महामुनीन्द्र नारदादिभिः सदैव भविताम् ।
अतुल्य पामरैरपिश्रितां पुमर्थं शारदां,
भजे कलिन्द-नन्दिनीं दुरन्त मोह भञ्जिनीम् ।।

जो समस्त वेद-शिरोभाग-उपनिषदों के लिये भी सदा अगम्य हैं। जो महामुनीन्द्र नारदादिकों से सदा भावित हैं (अर्थात् वे भी जिनकी भावना करते हैं) एवं अपना आश्रय लेने वाले अतुल्य (सर्वश्रेष्ठ) पामरों को भी जो परम पुरुषार्थ रूप परम कल्याण (मोक्ष अथवा प्रेम) प्रदान करती हैं। मैं उन्हीं दुरन्त-मोह-भञ्जिनि कलिन्द नन्दिनि का भजन करता हूँ।

९

य एतदष्टकं बुधस्त्रिकालमादृतः पठेत् ।
कलिन्द-नन्दिनीं हृदा विचिन्त्य विश्व-वन्दिताम् ।
इहैव राधिकापतेः पदाब्ज-भक्तिमुत्तमा-
मवाप्य स ध्रुवं भवेत्परत्र तत्प्रियानुगः ।।

जो विवेकी जन विश्व-वन्दिता कलिन्द-नन्दिनी का अपने हृदय में चिन्तन करते हुए इस अष्टक का तीनों (प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल) आदर पूर्वक पाठ करेंगे, निश्चय ही वे श्रीराधिका-पति श्रीकृष्ण को उत्तमा (प्रेम लक्षणा) भक्ति को यहीं (इसी पृथ्वी तल में) प्राप्त कर लेंगे और अंत में निश्चय-पूर्वक परम धाम श्रीवृन्दावन को प्राप्त करके श्रीकृष्णप्रिया श्रीराधिका जी के अनुगत (सहचरि) भाव को प्राप्त होंगे।

इति श्रीवृन्दावनेश्वरी-चरण-कृपावलम्ब-जृम्भित श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु विरचितं यमुनाष्टकं सम्पूर्णम् ।

इस प्रकार श्रीवृन्दावन की स्वामिनी श्रीराधिका के चरणाश्रय से आनन्द-कल्लोलमान् श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु द्वारा रचित यमुनाष्टक सम्पूर्ण हुआ।

